खंड

2

आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिन्दी कविता –2

इकाई 7

रहीम का काव्य

इकाई 8

मीरांबाई का काव्य

इकाई 9

बिहारी का काव्य

इकाई 10

घनानन्द का काव्य

इकाई 11

रसखान का काव्य

इकाई 12

नज़ीर अकबराबादी का काव्य

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. निर्मला जैन अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	संकाय सदस्य प्रो. सत्यकाम (पाठ्यक्रम संयोजक) प्रो. शत्रुघ्न कुमार प्रो. स्मिता चतुर्वेदी प्रो. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी अवकाश प्राप्त, हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली	
प्रो. मैनेजर पाण्डेय अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष भारतीय भाषा केंद्र,जे.एन.यू.,नई दिल्ली	
प्रो. हरिमोहन शर्मा अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली	
प्रो. गोबिंद प्रसाद प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष, भारतीय भाषा केंद्र जे.एन.यू.,नई दिल्ली	

पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक

प्रो. सत्यकाम, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई संख्या	संपादन सहयोग
डॉ.हर्षबाला शर्मा सहायक प्रोफेसर,हिन्दी विभाग इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली	7	डॉ. राजीव कुमार, परामर्शदाता (हिंदी) मानविकी विद्यापीठ, इग्नू
डॉ.अमिता पांडेय सहायक प्रोफेसर,हिन्दी विभाग इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली	8	
डॉ.प्रभाकर सिंह एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी	9,10	
प्रो.निरंजन सहाय प्रोफेसर,हिन्दी विभाग महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी (उ.प्र.)	11	
प्रो.सलिल मिश्र समकुलपति डॉ.बी.आर.अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली	12	

खंड 2 का परिचय

बी.ए. हिंदी (ऑनर्स) के विद्यार्थियों के लिए 'आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिंदी कविता' **(BHDC-103)** पाठ्यक्रम का यह दूसरा खंड है। इस खंड में भी छह इकाइयाँ हैं जिनमें क्रमशः रहीम, मीराबाई, बिहारी, घनानंद, रसखान और नज़ीर अकबराबादी के जीवन, उनकी काव्यगत संवेदना और अभिव्यक्ति की विशेषताओं का परिचय दिया गया है।

'रहीम का काव्य' इस पाठ्यक्रम की सातवीं और खंड की पहली इकाई है। हिंदी और फारसी – दोनों में काव्य रचनाएँ करने वाले रहीम ने श्रृंगारिक और प्रशस्तिपरक रचनाएँ भी की किंतु हिंदी में उनकी प्रतिष्ठा का मूल कारण उनकी नीतिपरक रचनाएँ ही हैं। प्रस्तुत इकाई में रहीम की कविता के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पाठ्यक्रम की आठवीं इकाई 'मीरांबाई का काव्य' मध्यकाल की प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवयित्री मीरांबाई पर केंद्रित है। भक्तिकाव्य में स्त्री-चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति 'मीरां' के काव्य में हुई है। सामंती समाज की वर्जनाओं का अस्वीकार कर मीरां ने कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति भावना को काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी। इस इकाई में 'मीरां' की कविता के सभी पक्षों को विश्लेषित किया गया है।

नौंवी इकाई 'बिहारी का काव्य' है। रीति सिद्ध कवि बिहारी ने प्रेम और सौंदर्य के साथ ही भक्ति, नीति और लोक जीवन से संबंधित रचनाएँ भी कीं। बिहारी ने किसी लक्षण ग्रंथ की रचना नहीं की किंतु उनकी प्रतिष्ठा रीतिकाल के शीर्षस्थ कवि के रूप में है। यह इकाई बिहारी की कविता की प्रमुख विशेषताओं को हमारे सामने लाती है।

दसवीं इकाई 'घनानंद का काव्य' है। रीतिमुक्त काव्यधारा से संबद्ध घनानंद ने अपने काव्य में प्रेम, सौंदर्य और श्रृंगार की स्वच्छंद अभिव्यक्ति की है। उनकी कविता में प्रेम के विरह पक्ष का वर्णन प्रधानता से मिलता है इसीलिए उन्हें 'प्रेम की पीर का कवि' कहा जाता है। प्रस्तुत इकाई में घनानंद की कविता के विविध पक्षों का उल्लेख किया गया है।

'रसखान का काव्य' पाठ्यक्रम की ग्यारहवीं इकाई है। रसखान हिंदू नहीं थे किंतु कृष्ण के व्यक्तित्व पर इस तरह रीझे हुए थे कि उनका समस्त लेखन कृष्ण के प्रेम को ही समर्पित है। रसखान का काव्य मध्यकालीन हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य की व्यापकता का प्रमाण है। रसखान की कविता की विशेषताएँ आप इस इकाई के माध्यम से समझ सकेंगे।

'नज़ीर अकबराबादी का काव्य' पाठ्यक्रम की बारहवीं और अंतिम इकाई है। 'नज़ीर' भाषिक स्तर पर ' हिंदवी की परंपरा के कवि हैं। भारतीय गंगा-जमुनी संस्कृति में आस्था रखने वाले नज़ीर ने अपने लेखन में 'होली' और 'ईद' को समान महत्व दिया। 'नज़ीर' लोक जीवन के चितेरे कवि थे। उनकी कविता में लोक के अनेक रूप मिलते हैं। यह इकाई नज़ीर की कविता की उपर्युक्त सभी विशेषताओं को समग्रता से आपके समक्ष रखती है।

प्रत्येक इकाई के अंत में इकाई में वर्णित विषयों से संबंधित उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गई है। उन पुस्तकों का अध्ययन कर आप अपनी साहित्यिक समझ को और विस्तार दे सकते हैं। इकाइयों के भीतर बोध प्रश्न और अभ्यास प्रश्न दिए गये हैं जिनको हल करके आप अपनी विषयगत प्रगति को परख सकते हैं। इकाइयों के अंत में 'परिशिष्ट' के अंतर्गत इस खंड में शामिल कवियों की कविताएँ दी गई हैं। कविताओं के नीचे कठिन शब्दों के अर्थ और भावार्थ दिए गए हैं। कठिन शब्दों के अर्थ समझकर अपने शब्दों में कविताओं की व्याख्या या भावार्थ लिखने का प्रयास करना आपके लिए उपयोगी होगा।

शुभकामनाओं के साथ!

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 7 रहीम का काव्य

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 रहीम का जीवन परिचय

7.3 रहीम का समय और रचना संसार

7.4 रहीम के काव्य में लोक जीवन

7.5 रहीम का काव्य सौंदर्य

7.6 रहीम की कविता का वाचन और आस्वादन

7.7 सारांश

7.8 उपयोगी पुस्तकें

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

मध्यकाल हिंदी साहित्य का एक ऐसा काल है जहाँ एक ओर भक्ति और समर्पण का दैन्य है वहीं विद्रोह और शक्ति का समन्वय भी। एक ओर नीति काव्य है जो जीवन-जगत का निचोड़ दर्शाता है तो दूसरी ओर धर्मों के बीच समन्वय को भी। मध्यकाल को दो भागों में बाँटा गया है– भक्तिकाल और रीतिकाल। रहीम भक्तिकाल तथा रीतिकाल के संधिस्थल के

कवि हैं। इस इकाई में आपको रहीम के काव्य के बारे में जानकारी दी जा रही है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रहीम के जीवन का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे;
- नीति कविता की परंपरा में रहीम का स्थान स्थापित कर सकेंगे;
- रहीम की नीति कविता को स्पष्ट कर सकेंगे;
- रहीम के काव्य की प्रासंगिकता दर्शा सकेंगे; तथा
- रहीम के काव्यगत कथ्य और शिल्प को स्पष्ट कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का पूर्व मध्यकाल भक्तिकाल कहलाता है। भक्तियुग आंदोलन और समन्वय का युग रहा। 1318 ई. से 1643 ई. के इस काल में तुलसी, सूर, कबीर और जायसी जैसे महत्वपूर्ण कवि हुए जिन्होंने जनता को समन्वय और शक्ति दोनों का मार्ग दिखलाया। सगुण और निर्गुण काव्यधारा के इन कवियों ने सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों के माध्यम से वैश्विक स्तर पर जनोन्मुख जीवन मूल्यों की स्थापना की। धर्म और जाति-पाँति से परे ये कवि उन विषमताओं पर प्रहार कर रहे थे, जो मनुष्य के मध्य भेदभाव निर्मित करती हैं। भक्ति के स्तर पर मनुष्य मात्र की समानता का संदेश देने वाले ये कवि इस भाव को मानते थे कि 'जाति-पाँति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।' रहीम इस स्थापना के जीते-जागते उदाहरण थे। पिता बैरम खाँ की मृत्यु के बाद अकबर के संरक्षण में रहीम उदारमना चरित्र के मालिक बने। भक्तिकाल से लेकर रीतिकाल तक रहीम के काव्य का विस्तार है। रीतिकाल में एक ओर दरबारी परंपरा का काव्य लिखा गया वहीं दूसरी ओर वीरता तथा नैतिकता से

संबंधित साहित्य की भी रचना हुई। राजा को नीति शिक्षा देने के साथ-साथ जनता के लिए राह दिखाने वाले साहित्य की भी समानांतर रूप से रचना हुई। रहीम का साहित्य नीति, श्रृंगार और वीरता से पूर्ण है तथा इनकी रचनाएँ जीवन का मार्गदर्शन करने में समर्थ हैं।

7.2 रहीम का जीवन परिचय

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रहीम (पूरा नाम– अब्दुर्रहीम खानखाना) को तुलसी के समकक्ष रखकर साहित्य के इतिहास में उनका मूल्याँकन करते हुए उनकी सबसे बड़ी विशेषता बताई है, 'जीवन की सच्ची परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव।' जीवन के अनुभवों ने रहीम की संवेदना को विस्तृत किया। उनके इन्हीं अनुभवों का निचोड़ उनके दोहों में दिखाई देता है।

रहीम का जन्म संवत् 1556 ई. में हुआ और निधन 1626 ई. में। जीवन की इस यात्रा में रहीम ने जिन सुखद और तिक्त अनुभवों को प्राप्त किया, उनसे उनका काव्य संसार समृद्ध ही हुआ। वैभवकालीन समृद्धि के बीच पले-बढे रहीम ने अकबर के काल में अनेक युद्ध लड़े, खानखाना की उपाधि पाई, शासक के कोपभाजन बने, जहाँगीर द्वारा दिए गए कारावास का दंड भी भोगा, खानखाना की उपाधि भी वापस पाई और जहाँगीर की प्रशंसा में काव्य रचना भी की।

रहीम के पिता बैरम खान अकबर के दरबार के नवरत्नों में से एक थे। अकबर को शासक बनाने में बैरम खान की भूमिका के संबंध में इतिहास में विस्तृत जानकारी मिलती है। तेरह वर्ष के अकबर के संरक्षक के रूप में बैरम खान ने अपना कर्तव्य निभाया और उसे शासक के रूप में स्थापित भी किया। बैरम खान की मृत्यु के समय रहीम की उम्र तीन से पाँच बरस के बीच की बताई जाती है। अकबर ने अभिभावकीय कर्तव्य निभाते हुए रहीम के संरक्षण का

दायित्व लिया तथा उसकी शिक्षा की व्यवस्था कराई। रहीम ने अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत, ब्रजभाषा सीखी और विविध भाषाओं में काव्य रचना की। वे युद्ध और कला दोनों में महारत रखने वाले व्यक्तित्व के अद्‌भुत उदाहरण हैं।

अकबर ने रहीम को 1633 ई. में गुजरात का सूबेदार बनाया तथा अहमदाबाद की विजय पर उन्हें खानखाना की उपाधि प्रदान की। रहीम शहजादे सलीम (भविष्य में जहाँगीर) के शिक्षक थे। शिक्षक के रूप में उन्होंने सलीम की अनेक अनुचित नीतियों पर विरोध जताया। रहीम को जहाँगीर और नूरजहाँ के प्रति विद्रोह करने वाले शाहजहाँ का साथ परिस्थितियों के वशीभूत होकर देना पड़ा। ऐसे में जहाँगीर ने उन्हें कैद में डाल दिया। परंतु समय के साथ जहाँगीर ने अपनी गलती को सुधारते हुए रहीम को न केवल क्षमा कर दिया बल्कि उन्हें खानखाना की उपाधि भी लौटा दी। रहीम ने ऐसे में जहाँगीर की प्रशंसा में इस दोहे की रचना की :

मरा लुत्फे जहाँगीरी जे ताई दाते रब्बानी

दो बार : दो दाद : दो बार खानखानी (रहीम दोहावली, पृ. 5)

रहीम का जीवन विरुद्धों के सामंजस्य का अप्रतिम उदाहरण है। एक समय में अपार वैभव तो किसी अन्य समय में दीनहीन जीवन, एक ओर अरबी-फारसी में रचना कर्म, दूसरी ओर संस्कृत में रचनाएँ, भक्ति और श्रृंगार का समन्वय साथ ही धार्मिक सीमाओं को तोड़कर समन्वय और सद्‌भाव को स्थापित करने वाले रहीम का जीवन अनुकरणीय है।

पुत्रों की मृत्यु ने रहीम को तोड़कर रख दिया। ऐसे में दक्षिणी किले का प्रबंध इनके हाथों से निकलने लगा जिसके फलस्वरूप कुछ समय के लिए जहाँगीर इनसे नाराज हो गया।

खानखाना की उपाधि इनसे छीन ली गई और नूरजहाँ के विश्वासपात्र महावत खान को खानखाना बना दिया गया। ऐसे में शाहजहाँ द्वारा सहायता माँगने पर रहीम ने उनका साथ दिया। पर अंततः जहाँगीर ने शाहजहाँ और रहीम दोनों को माफ़ कर दिया। रहीम के जीवन काल में इतने घटनाक्रम हैं कि उन पर हैरत ही हो सकती है, साथ ही यह भी यकीन होता है कि व्यक्ति का समय किसी भी क्षण बदल सकता है। यह प्रशंसा का विषय है कि तमाम विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए भी रहीम ने ऐसी रचनाएँ कीं जो मानव के लिए प्रेरणाप्रद हैं।

यहाँ यह उल्लेख करना भी जरूरी है कि रहीम मात्र कवि नहीं बल्कि योद्धा भी थे। मृत्यु तक अनेक युद्धों में नेतृत्व करते हुए वे कई बार शासकों के कोपभाजन भी हुए। युद्धकला और साहित्य का ऐसा गठबंधन प्रायः दुर्लभ है।

उनका मकबरा आज भी हुमायूँ के मकबरे के बगल में है। टूटी-फूटी अवस्था में निजामुद्दीन पर। पर व्यक्ति अपने मकबरे से नहीं अपने काम से जाने जाते हैं और रहीम का काम, उनका काव्य ही उन्हें विशिष्ट बनाने के लिए पर्याप्त है।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

   (क) रहीम का जन्म 1610 ई. में हुआ था। ( )

   (ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रहीम की विशेषता बताई है– 'जीवन की सच्ची परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव।' ( )

   (ग) रहीम ने केवल भक्तिपरक रचनाएँ की हैं। ( )

(घ) रहीम कवि होने के साथ एक योद्धा भी थे। ( )

2. रहीम के जीवन की तीन प्रमुख घटनाओं का उल्लेख कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

3. रहीम का जीवन विरुद्धों के सामंजस्य का उदाहरण है, सिद्ध कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

7.3 रहीम का समय और रचना संसार

रहीम का समय दरबार और दरबारी कविता को केंद्र में रखता है। मध्ययुगीन समाज जहाँ एक ओर शासकों द्वारा प्रश्रय दिए गए काव्य और प्रशंसामूलक साहित्य के बीच बनता समाज था वहीं अकबर की उदार नीतियों से लेकर जहाँगीर की विलास और कलाप्रियता तक विस्तृत काल था।

अकबर की नीतियाँ धर्मनिरपेक्षता पर आधारित थीं। धर्म के आधार पर भेद-भाव नहीं था। धर्म को लेकर जितनी उदारता अकबर में थी, रहीम पर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

रहीम ने मुगल शासकों के दो कालखंडों में जीवन जिया और देखा– एक जहाँ उनकी महत्ता को समझते हुए उनकी काव्य प्रतिभा के निखार के लिए शासक (अकबर) ने प्रयत्न किया तथा अभिभावकीय कर्तव्य से रहीम को ठीक वही शिक्षा प्रदान की जिस शिक्षा का अनुसरण बाबर, हुमायूँ तथा स्वयं अकबर ने किया। करतार सिंह रचित पुस्तक 'लाइफ ऑफ़ गुरू नानक' में नानक तथा बाबर की मुलाकात का जिक्र मिलता है जहाँ बाबर ने गुरू नानक से शासन व्यवस्था की सीख प्राप्त की, 'यदि तुम भारत में अपना शासन स्थापित करना चाहते हो, तो इस देश को अपना बनाओ, हिंदू और मुसलमान जनता को एक समान समझो तथा शासन को न्याय और दया पर आधारित रखो।' अकबर के शासन काल में भी यही सूत्र कार्य करता दिखाई देता है। सिख धर्म से लेकर अनेक धर्म और संप्रदाय इसी काल में फले-फूले। दीन-ए-इलाही नामक धार्मिक विचार का उदय हुआ। हिंदुओं की धार्मिक यात्रा पर लगाए जाने वाले कर समाप्त कर दिए गए। जजिया कर भी समाप्त कर दिया गया। 'आइन-ए-अकबरी' में इसका उल्लेख भी मिलता है कि अकबर ने धर्म की व्याख्या का अधिकार भी अपने हाथ में ले लिया था। इस काल में अकबर ने प्रजा के साथ संबंध कायम करने के लिए स्वयं भेस बदलकर प्रजा के सुख-दुख का पता लगाने का कार्य भी किया। अकबर के शासनकाल में कला और कलाकार को सम्मान दिया जाता था। इसी काल में विदेशी व्यापारी भारत की ओर आकर्षित हुए। अंग्रेजों ने व्यापार हेतु अकबर के दरबार में याचना भी की।

राष्ट्रीय त्योहारों के प्रति सभी धर्मों में सद्भाव दिखाई देता है। इस काल में समानांतर रूप से रामकाव्य, कृष्णकाव्य और संत-सूफी काव्य भी लिखे गए। कबीर जहाँ हिंदू-मुस्लिम दोनों धर्मों पर व्यंग्य कर रहे थे वहीं बाबा फरीद, ख्वाजा बख्तियार काकी से लेकर रामानंद, गुरू

नानक, तुकाराम जैसे संत धार्मिक सद्भाव और भ्रातृभाव की प्रेरणा दे रहे थे। रहीम, रसखान जैसे कवि इसी काल में शांति और सौहार्द्र के प्रतीक बने।

रहीम जहाँ इस काल में राम नाम को भव सागर की नाव मान रहे थे, वहीं रसखान कृष्णभक्ति को जीवन समर्पित कर रहे थे, इसका एक बड़ा श्रेय अकबरकालीन उदार राजनैतिक वृत्ति को दिया जाना चाहिए।

जहाँगीर के काल की विलासी वृत्ति में भी वास्तुकला, चित्रकला और साहित्य प्रेम का विशिष्ट स्थान रहा वहीं दूसरी ओर उसकी नीतियों का विरोध करने वालो के लिए उसके दरबार में कोई स्थान न था। उसने खानखाना को अपने पुत्र (खुर्रम) का समर्थन करने पर जेल में डाल दिया।

एक-दो घटनाओं के अतिरिक्त जहाँगीर का रुख प्रायः कला समर्थक रहा। मुगल शासक के रूप में उनकी नीतियाँ प्रायः उदार रहीं। अक्सर उसकी न्यायप्रियता की चर्चा करते हुए जहाँगीर के दरबार के बाहर लगी जंजीर का जिक्र किया जाता है। जहाँगीर की विलासप्रियता के साथ उसकी सभी धर्मों के प्रति उदार दृष्टि का उल्लेख भी जरूरी है। प्रायः उसके समय के सभी हिंदू राजाओं के साथ उसके सदय संबंधों की सूचना इतिहास में प्राप्त होती है।

कला, चित्रकला, हस्तकला, वास्तुकला के प्रति जहाँगीर विशेष रूप से आकर्षित था। ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से हॉकिन्स जहाँगीर के दरबार में आया था। पक्षियों का सबसे बड़ा चित्रकार मंसूर जहाँगीर के दरबार की शोभा था। जहाँगीर ने अपने देश-काल की सांस्कृतिक विविधताओं को प्रश्रय दिया।

रहीम को देश-काल के स्तर पर उदारवादी शासक प्राप्त हुए। ऐसे में रहीम द्वारा भी उदार वृत्ति का विस्तार करना स्वाभाविक ही था। उदारवादी शासकों के इस युग में भक्तिकालीन तथा रीतिकालीन कवियों को रचना और रचनात्मकता के विकास के अनेक अवसर प्राप्त हुए।

रहीम की प्रमुख रचनाएँ और उनका परिचय

दोहावली : 'दोहावली' में रहीम ने अपने हृदय के अनुभवों तथा स्व-जीवन के कटु-मधुर अनुभवों से सिक्त दोहों की रचना की है।

नगर शोभा : इस ग्रंथ में विभिन्न जातियों और व्यवसाय से जुड़ी स्त्रियों के सौंदर्य का वर्णन मिलता है।

बरवै नायिका भेद : बरवै छंद (12 एवं 7 पर यति, अंत में लघु-गुरू एवं तुक मिलान) में रचित इस रचना में अवधी भाषा का प्रयोग करते हुए रहीम ने नायिकाओं के भेद प्रस्तुत किए हैं।

शृंगार सोरठा : इस ग्रंथ के नाम पर केवल सात छंद मिलते हैं। शृंगार के सोरठे और दोहे दोनों ही इसमें संकलित हैं।

मदनाष्टक : मालती छंद में रचित अष्टकों की लंबी परंपरा के इस ग्रंथ की रचना खड़ी बोली और संस्कृत शैली में की गई है। इस ग्रंथ की भाषा को विद्वानों ने रेख्ता भी कहा है। शृंगारिक रचना के इस ग्रंथ में कृष्ण और राधा के प्रेम की परिकल्पना मिलती है। इस ग्रंथ के चार रूप मिलते हैं जिसमें से विद्यानिवास मिश्र ने सम्मेलन पत्रिका में प्राप्त 'मदनाष्टक' को आधार बनाया है तथा नागरी प्रचारिणी सभा वाले अष्टकों को फुटनोट्स में दिया है।

खेट कौतुक जातकम : यह ज्योतिष संबंधी ग्रंथ है। सूर्य, चंद्र, शनि आदि पर बारह-बारह छंद इसमें शामिल है। रहीम के विस्तृत ज्ञान का नमूना इस ग्रंथ में देखा जा सकता है।

अन्य : फुटकर छंद, बरवै, संस्कृत श्लोक तथा फारसी में लिखित 'वाकेआत बाबरी' (अनुवाद : 'बाबरनामा') तथा 'फारसी दीवान' (अप्राप्य)।

बोध प्रश्न

4. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए।

   (क) रहीम की ज्योतिष संबंधी पुस्तक का नाम लिखिए।

   .....

   .....

   (ख) रहीम की फारसी रचनाओं के नाम लिखिए।

   .....

   .....

   (ग) विद्यानिवास मिश्र ने मदनाष्टक की किस प्रति को ग्रंथावली का आधार बनाया?

   .....

   .....

5. रहीम की रचनात्मक विशिष्टताओं का उल्लेख दस पंक्तियों में कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7.4 रहीम के काव्य में लोक जीवन

रहीम को जीवन और समाज की अद्‌भुत समझ और पहचान थी। लोक जीवन की अभिव्यक्ति और लोकधर्मिता के कारण उनकी कविता में जन समाज के पर्व भी हैं और जीवन में उचित अनुचित के बीच भेद करने के सुझाव भी। सुई और तलवार जैसे लोक जीवन से उपजे दृष्टांत भी हैं वहीं चींटी और शक्कर के उपमान से जीवन में साधारण मनुष्य की महत्ता का निदर्शन भी है। रहीम के काव्य के छोटे-छोटे दोहे और बरवै जीवन जीने के सूत्र देते हैं। व्यावहारिक जीवन के सूत्र रहीम की कविता में सर्वत्र मौजूद हैं। कुम्हार का चाक उनकी कविता में मौजूद है, 'रहिमन चाक कुम्हार के ,माँगे दिया न देई', वहीं संगति चयन की सीख भी है। रहीम ओछे आदमी से मित्रता एवं शत्रुता दोनों ही न करने की सीख देते हैं क्योंकि श्वान का काटना और चाटना दोनों ही मनुष्य के लिए घातक है।

लोक जीवन की गहरी समझ का ही परिणाम है कि रहीम के वे दोहे जहाँ हिंदू परिवारों में मौर नदी में सिराए जाने की प्रथा को भी उन्होंने जीवन दर्शन समझाने का माध्यम बना लिया है। इतनी सूक्ष्म दृष्टि केवल उस रचनाकार की ही हो सकती है जिसने स्वयं इन अनुभवों को गहराई से देखा और अनुभव किया हो :

काज परे कुछ और है, काज सरे कुछ और।

रहिमन भँवरी के भए, नदी सिरावत मौर।

लोक जीवन से तीज का प्रसंग, सास-ननद के बहुश्रुत प्रसंग, दांपत्य जीवन की आत्मीयता, रिश्ते-नाते के लोगों से कभी-कभी मिलने से ही सम्मान बने रहने की सीख– 'नात नेह दूरी भली...', राम सीता के प्रसंग, सुदामा-कृष्ण प्रसंग; सब रहीम की कविता में मूर्त हो उठे हैं। यहाँ तक कि साठे में पाठा मानकर विवाह करने वालों को भी व्यंग्यपूर्ण ढंग से वे सावधान करते हैं :

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।

पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय।।

लोक व्यवहार में मृदुभाषी होने से कई बिगड़े काम बन जाते हैं। रहीम इस संदर्भ को व्यक्त करने के लिए काक-पिक का दृष्टांत प्रस्तुत करते हैं। इतने व्यापक अनुभव के कारण ही रहीम संगति का फल दर्शाने में समर्थ हो सके :

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन

जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन।।

7.5 रहीम का काव्य सौंदर्य

रहीम की कविता को प्रायः नीति काव्य के रूप में देखा गया है परंतु रहीम के काव्य का विस्तार श्रृंगार से लेकर लोक जीवन तथा भक्ति तक है। रहीम की प्रमुख रचनाओं से इस बात की पुष्टि हो जाती है– 'दोहावली', 'नगर शोभा', 'मदनाष्टक', 'बरवै नायिका भेद', 'भक्ति

परक बरवै', 'शृंगार सोरठा' आदि रहीम की प्रमुख रचनाएँ हैं। रहीम ने शासकों के साथ रहते हुए अनेक रचनाओं का अनुवाद भी किया जिनमें 'वाकयात बाबरी' का तुर्की से फारसी में किया गया अनुवाद शामिल है। उन्होंने फारसी में 'फारसी दीवान' भी लिखा। 'खेट कौतुक जातकम' ज्योतिष संबंधी ग्रंथ है। रहीम के काव्य सौंदर्य को दो भागों में बाँट कर उसका अध्ययन किया जा सकता है– भावपक्ष तथा कला पक्ष।

भाव पक्ष

रहीम की कविता के तीन आस्वाद बिंदु हैं– नीति, शृंगार और भक्ति। शृंगार के दोनों पक्षों– संयोग और वियोग का चित्रण रहीम करते हैं। परकीय और स्वकीय प्रेम दोनों का चित्रण करने के बाद भी रहीम अंततः गार्हस्थ्य प्रेम को ही श्रेष्ठ मानते हैं। प्रेम के वर्णन से पूर्व ही वे प्रेमियों को घनानंद की भाँति ही सावधान कर देते हैं– 'प्रेम पंथ ऐसो कठिन सब कोऊ निबहत नाहिं', पर इस प्रेम का सुख भी अद्वितीय है। रहीम की कविता में शृंगार भी है और जीवन के कठिन मार्ग में राह दिखाने वाली उक्तियाँ भी। रहीम बहुज्ञ थे और बिहारी की भाँति लगभग जीवन के अधिकांश पहलुओं पर रहीम ने कलम चलाई। रहीम दरबारी कवि थे और दरबार के भीतर रहते हुए शृंगार और वीरता के प्रदर्शन से वे मुक्त नहीं हो सकते थे अतः यह काव्य भी उन्होंने रचा। 'नगर शोभा' में उन्होंने कैथनी, जौहरिन आदि के सौंदर्य पर बरवै लिखे। 'रहीम का यह काव्य सामंती संसर्ग का परिणाम है। (रहीम ग्रंथावली, विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ 61) 'मदनाष्टक' भी शृंगार पर आधारित ग्रंथ है। रहीम की कविता में समय चूक जाने वाले के लिए भी उपदेश है– 'समय लाभ सम लाभ नहीं, समय चूक सम चूक', तो वहीं दिन के फेर को चुप होकर बैठ कर देखने का संदेश भी– 'रहिमन चुप ह्वे बैठिए देखि दिनन को फेर'।

रहीम ने मिथकों और पौराणिक नामों का प्रयोग करके दोहे के गागर में सागर भरने का काम किया। एक दोहा में वे भीम और दुःसासन का उदाहरण देते हैं– 'सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहि भीम' तो अन्यत्र उन्होंने शिव-भूप और दधीचि के उदाहरण भी प्रस्तुत किए। मिथक और पुरातन प्रतीकों के प्रयोग से कविता एक लंबे समय अंतराल में यात्रा करती है और जन-मन तक आसानी से पहुँच जाती है। रहीम की कविता के ऐसे अनेक प्रयोग उन्हें उनके काल में ही दरबार से लेकर जनता तक प्रसिद्ध कर देते हैं। ब्रज के लता-पता बनने की इच्छा उन्हें गोप-गोपियों के दुख को समझने की युक्ति देती हैं। वे कृष्ण से भी शिकायत करते हैं कि यदि ब्रज को छोड़कर ही जाना था तो गोवर्धन हाथ में क्यों उठाकर इन्हें बचाया था– 'तो कहें कर पर धरयो, गोवर्धन गोपाल', ब्रज से ऐसा प्रेम अन्यत्र दुर्लभ है। भक्ति, नीति और शृंगार का यह संगम रहीम के काव्य की शक्ति को और बढ़ा देता है।

रहीम लोक की गहरी समझ रखते हैं। समाज की स्थितियों के अनुसार वे धन के अर्थशास्त्र को भी जानते और समझते हैं। धन के बढ़ने और घटने से धनिकों के स्वास्थ्य और सम्मान दोनों पर ही प्रभाव पड़ता है। धनिक समाज पैसे के बढ़ने से सम्मान अनुभव करता है और पैसे के घटने के साथ ही उसकी स्थिति बिगड़ जाती है, पर जो गरीब मजदूर घास बेचकर अर्थात नितप्रति मेहनत करके अपना जीवन किसी प्रकार व्यतीत करते हैं, उन्हें धन के घटने और बढ़ने से अंतर नहीं पड़ता। उनकी चिंता तो दो-जून भोजन जुटाने भर की होती है।

रहीम लोक अनुभवों के धनी भी थे और धनवान भी। ऐसे में दोनों पक्षों के जीवन से वे सुपरिचित थे। धन के अभाव से त्रस्त अमीरों को भी उन्होंने देखा और गरीब की दशा को भी। इसका एक पक्ष यह भी है कि धनी भी सहायता तभी कर सकता है जब उसके पास

सहायता हेतु पर्याप्त राशि हो। जिनका जीवन दो जून रोटी के जुगाड़ में ही खत्म हो जाता है, वे धनराशि के आधिक्य और समाप्य दोनों का ही मोल नहीं जानते। रहीम के दोहों की खासियत है कि वे अर्थों के बाहुल्य से पूर्ण हैं। मनुष्य जीवन के लिए सीख उनके काव्य में निहित है। जो जैसी चाहे, वैसी सीख ले सकता है।

इसी प्रकार रहीम कहते हैं कि जो गरीब व्यक्ति की सहायता करते हैं ,वही वास्तव में बड़े कहलाने योग्य हैं। मनुष्य के बड़प्पन का ज्ञान उसके सहायता भाव तथा उदारवृत्ति से ही होता है। जो सज्जन हैं और उदार वृत्ति के हैं, वही इस सज्जनता का विस्तार उन लोगों तक कर सकते हैं, जिनको सहायता की आवश्यकता है। रहीम बड़प्पन की परिभाषा और सूत्र देते हुए कृष्ण और सुदामा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कृष्ण और सुदामा बालपन के मित्र थे। कृष्ण जहाँ राजा के पुत्र थे, वहीं सुदामा गरीब ब्राह्मण। मथुरा के राजा बनने के पश्चात भी कृष्ण अपने बालसखा को नहीं भूले। जगत प्रसिद्ध कथा के अनुसार जब सुदामा कृष्ण से सहायता माँगने पहुँचे तो कृष्ण ने तीनों लोक उनकी मित्रता को समर्पित कर दिए। कृष्ण-सुदामा की इस मित्रता में कृष्ण का ही बड़प्पन सिद्ध हुआ। रहीम लोक प्रसिद्ध कथा के माध्यम से उदारता और बड़प्पन का रूपक रचते हैं। बहुश्रुत तथा जन प्रचलित कथा के माध्यम से कही गई बात का प्रभाव लंबे समय तक रहता है। रहीम ने प्रायः नीतिगत संदेश देने के लिए ऐसी ही कथाओं का सहारा लिया है। रहीम अन्यत्र भी कहते हैं– 'बड़ा हुआ तो क्या हुआ,जैसे पेड़ खजूर', पक्षी को छाया न दे सके और फल भी नहीं ऐसे बड़े होने का क्या अर्थ। भाग्य, प्रेम, संस्कृति, कृष्ण-राधा, भक्ति, समर्पण, दैन्य, दानवीरता, साहस और नैतिकता रहीम के काव्य के भाव पक्ष के कुछ उदाहरण हैं।

कला पक्ष

रहीम दरबारी कवि थे। अतः दोहे की रचना दरबारी परंपरा के उपयुक्त ही थी। अलंकारों का प्रयोग करके रहीम ने चमत्कार की सृष्टि भी की है। रहीम के प्रिय छंद बरवै, सोरठा, दोहा और घनाक्षरी थे। बरवै छंद में 'बरवै नायिका भेद' की रचना की गई वहीं 'दोहावली' की रचना दोहे में। सोरठा छंद में 'शृंगार सोरठा' लिखा गया। बरवै के संदर्भ में एक कहानी भी प्रचलित है जिसका जिक्र विद्यानिवास मिश्र रहीम ग्रंथावली में करते हैं, रहीम इतने सहृदय थे कि एक सिपाही की स्त्री के इस बरवै पर प्रसन्न हो गए, 'प्रेम प्रीति के बिरवा चलेहु लगाय।/सींचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय।।' तथा सीपाही को भरपूर धन देकर उसकी नवागत वधू के पास भेज दिया और इसी छंद में पूरा ग्रंथ लिख डाला। इस प्रकार बरवै रहीम का प्रिय छंद हो गया।

अवधी, ब्रज, फारसी, खड़ी बोली पर रहीम का अद्‌भुत अधिकार था। एक छंद में एक पूर्ण रचना लिखने वाले रहीम का शब्द भंडार अत्यंत समृद्ध है। तत्सम, तद्‌भव, देशज और विदेशज शब्दों का उनके काव्य में भंडार है। डॉ. प्रकाश त्रिपाठी 'रहीम की काव्यभाषा' में कहते हैं, "रहीम ने अपनी काव्यसर्जना में व्याकरण पर पूरा ध्यान दिया। व्याकरणिक प्रक्रिया में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, काल तथा विभक्तियों के अनेक रूपों का प्रयोग रहीम ने अपनी काव्यभाषा में किया है। रहीम की काव्यभाषा में हमें पर्यायवाची और विलोम भी मिलते हैं। रहीम ने अपने काव्य में शब्द शक्तियों तथा विराम चिह्न का भी खुल कर प्रयोग किया है। रहीम ने अपने दोहों में माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों का भी प्रयोग किया है।" (भूमिका, 'रहीम की काव्यभाषा', डॉ. प्रकाश त्रिपाठी)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी रहीम की काव्यभाषा की प्रशंसा की है। रहीम ने लोक जीवन से ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया है, जिसका शायद अब जिक्र भी नहीं मिलता। श्रीकांत

उपाध्याय ने 'ये रहीम दर-दर फिरहिं' किताब में ऐसे अनेक शब्दों का जिक्र किया है जिनकी अब जानकारी न होने के कारण रहीम के दोहों की व्याख्या और भाव बदल गए हैं। ऐसे दो शब्दों का जिक्र यहाँ प्रर्याप्त होगा। पहला शब्द है 'रसमरा' जिसका इस्तेमाल रहीम की इन पंक्तियों में हुआ है, 'बीच उखारी रसमरा, रस काहे न होय।' इस शब्द को कहीं रसमरा तो कहीं रसभरा कहकर अर्थ निकालने की कोशिश की गई है। इस शब्द का अर्थ है– एक सरकंडा जो ईख के खेत में अपने आप पैदा हो जाता है। रहीम ईख ही नहीं सरकंडे को भी इतने ध्यान से देख कर लिखते हैं कि ईख के खेत में होने पर भी सरकंडा मीठा नहीं हो पाता।

लोक जीवन और किसानी जीवन की इतनी सूक्ष्म समझ ने रहीम के काव्य को जन-मन का काव्य बना दिया। इसी तरह का एक और शब्द पुस्तक में उल्लिखित है– 'राई करोंदा'। क्या ये करोंदे की कोई प्रजाति है अथवा दोनों शब्द अलग अलग हैं? रहीम की काव्यभाषा इतनी समृद्ध है कि आज कई शब्दों पर अटकलें लगाई जा सकती हैं पर सही अर्थ तक पहुँचने के लिए उतनी सूक्ष्म समझ का होना भी उतना ही आवश्यक है।

रहीम ने 'रामायण', 'महाभारत' से लेकर जन-मन के बीच प्रचलित प्रतीकों का प्रयोग किया। उदाहरण के लिए 'का रहें हरि को घट्यो जो भृगु मारी लात' में भृगु ऋषि द्वारा विष्णु की परीक्षा का पूर्ण विवरण पढ़ा जा सकता है। विष्णु की क्षमाशीलता और ऋषि का क्रोध किस प्रकार बड़े को छोटा और छोटे को बड़ा बना देता है, इसका संपूर्ण दिग्दर्शन इस एक पंक्ति में मिल जाता है।

रहीम ने व्यवसाय से जुड़े अनेक शब्दों को भी काव्य में स्थान दिया है जैसे– बंजारिन, लुहारिन, गूजरी, घसियारी। इन शब्दों को समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी पढ़ा जाना चाहिए। 'बंजारिन झुमकत चलत, परम ऊजरी गूजरी' जैसी पंक्तियाँ उनकी काव्य कला की शक्ति के उदाहरण हैं।

रहीम का शब्द शक्ति प्रयोग भी विलक्षण है। आज के समय में रहीम की व्यंजना अत्यंत सार्थक है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

यह रहीम माने नहीं, दिल से नवा जो होय।
चीता, चोर कमान के, नए ते अवगुण होय।।

साधारणतया यह माना जाता है कि झुकने वाला व्यक्ति मंगल करता है। पर जब-जब चीता आखेट करते हुए, चोर सेंध लगाते हुए और धनुष शर-संधान करते हुए झुकते हैं तो केवल अमंगल करते हैं। आज के समय में सबसे अधिक वही झुकता है, जो विनम्रता का आवरण ओढ़कर अमंगल करने के लिए हमारे बीच ही विद्यमान रहता है।

श्रीकांत उपाध्याय ने उन्हें मूलतः तद्भवता का कवि माना है, "उनकी तद्भवता में नीलम की चमक है। इनकी देशजता में पुखराज दमकता है। दोहों में ग्राम्यांचल के मनोरम चित्र हैं। वन प्राणियों से समन्वित वन-कांतार। नदी-पर्वत-समुद्र।" (भूमिका, 'ये रहीम दर-दर फिरहिं')

ऐसे अनेक तद्भव शब्दों को उनके काव्य में देखा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप– करिया, बासन, कालिख, स्वान, बिगारै, ऊख, परिनाम, घरिया, अछत, अकास, कुकूर, दसानन, काज आदि।

लोक कहावतों का प्रयोग भी रहीम ने अपने दोहों में किया है। उनकी अनेक पंक्तियाँ तो दोहों से होते हुए भी कहावतों के रूप में प्रयुक्त होने लगीं। यह रहीम के काव्य की कलात्मकता है। 'दूध कलारी कर गहे, मद समुझै सब ताहि' अथवा 'नीर चुरावै संपुटी, मार सहे घरियार' आदि।

बोध प्रश्न

6. नीचे दिए गए कथनों में रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

   (क) रहीम की कविता को प्रायः ..... के रूप में देखा गया है।

   (ख) बरवै नायिका भेद ..... छंद में लिखी गई रचना है।

   (ग) रहीम अंततः ..... प्रेम को ही श्रेष्ठ मानते हैं।

   (घ) रहीम ने प्रायः ..... देने के लिए कथाओं का प्रयोग किया है।

7. 'रहीम लोक जीवन के पारखी थे', इस कथन की समीक्षा कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

8. रहीम चींटी और शक्कर के दृष्टांत के माध्यम से क्या संदेश देते हैं? स्पष्ट कीजिए।

   .....

   .....

9. रहीम के कला पक्ष की विशिष्टताओं का उल्लेख दस पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7.6 रहीम की कविता का वाचन और आस्वादन

कविता का वाचन

देखिए– परिशिष्ट

कविता आस्वादन

- **एकै साधे सब सधै...**

संदर्भ

प्रस्तुत काव्य-पंक्तियाँ रहीम द्वारा रचित 'दोहावली' से ली गई है।

व्याख्या

एक कार्य को पूरा करने के लिए किया गया प्रयास अन्य कार्यों को भी पूरा कर देता है। अनेक कार्य एक साथ करने की मंशा प्रत्येक कार्य का नाश कर देती है। रहीम कहते हैं कि जब व्यक्ति पेड़ की जड़ को सींचता है तो उसे फल और फूल स्वयं ही प्राप्त हो जाते हैं। रहीम ने युग-युगांतरकारी उक्तियों को दोहे के माध्यम से व्यक्त किया है। मनुष्य जब-जब अनेक कार्यों को एक साथ करने का प्रयास करता है, तब-तब अक्सर असफल ही होता है। एक समय में किया गया एक कार्य हमें सफल भी बनाता है और धैर्यशील भी। रहीम जगत प्रसिद्ध उदाहरणों से अपनी बात पुष्ट करते हैं। पेड़ का प्रसिद्ध उदाहरण देकर वे समझाते हैं कि मनुष्य यदि पेड़ की जड़ को सींचता है तो उससे फल और फूल स्वयं ही मिल जाते हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि लक्ष्य का सही ज्ञान होना भी आवश्यक है। यदि लक्ष्य पर ध्यान न हो तो प्रयत्न करने पर भी व्यक्ति जीवन भर सफल नहीं हो पाता।

विशेष

(i) उपर्युक्त पद्यांश में उदाहरणों का प्रयोग किया गया है। रहीम अन्यत्र भी इसी प्रकार का उदाहरण देते हैं– 'रहिमन मनहि लगाईं कै, देखि लेहू किन कोय/नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होय' यहाँ मन लगाकर कार्य करने पर नर ही नहीं नारायण को भी प्राप्त करने की बात कही गई है। रहीम नीति काव्य के प्रणेता हैं। मध्यकाल में कही गई उनकी उक्तियाँ आज भी उतनी ही सार्थक हैं।

(ii) रहीम के अनुभव की सूक्ष्मता, व्यापकता और गहराई इन काव्य पंक्तियों में सशक्त रूप से अभिव्यक्त हुई है।

- **कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।...**

संदर्भ

प्रस्तुत काव्य-पंक्तियाँ रहीम द्वारा रचित 'दोहावली' से ली गई है।

व्याख्या

जब मनुष्य के पास धन और संपत्ति होती है, तब सभी उसके समीपवर्ती और सगे संबंधी होने का दावा करते हैं। पर विपत्ति में साथ देने वाले ही सच्चे मित्र होते हैं। रहीम जन जीवन के अनुभवों से पूर्ण थे। मित्रता का दावा करके धोखा देने वालों को भी उन्होंने देखा था। धन के आधिक्य से प्रभावित होकर मित्रता का दावा करने वालों की समय बदलते ही नजर बदलती भी उन्होंने अवश्य देखी होगी। 'काज पड़े कुछ और है, काज सिरे कुछ और' वाली कथा भी उन्होंने ही रची, जो ऐसे ही अनुभवों से उपजी होगी। रहीम राज काज के प्रमुख व्यक्ति होने के नाते ऐसे न जाने कितने ही लोगों के संपर्क में आते होंगे जो धन और संपत्ति की लालसा में उनके प्रिय होने और सगे होने का दावा करते रहते रहे होंगे। इसीलिए रहीम ने अनेक प्रकार से संबंध स्थापित करने वालों को मित्र मानने से इंकार किया तथा उसे ही सच्चा मित्र माना जिसे विपत्ति रूपी कसौटी पर कसकर ही पहचाना जा सके।

विशेष

(i) कसौटी एक विशेष प्रकार का पत्थर होता है जिस पर कसकर सुनार सोने की पहचान करता है। मित्रता की पहचान भी ऐसी ही कसौटी की अपेक्षा रखती है। रहीम अन्यत्र भी विपत्ति (विपदा) को थोड़े दिन आमंत्रित करते हैं जिससे मित्र और शत्रु की पहचान हो सके।

(ii) अनुभव की सच्चाई और ईमानदार सहज सटीक अभिव्यक्ति रहीम की कविता की महत्वपूर्ण विशेषता है।

- **छिमा बड़न को चाहिए, छोटेन को उतपात। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत काव्य-पंक्तियाँ रहीम द्वारा रचित 'दोहावली' से ली गई है।

व्याख्या

रहीम कहते हैं कि छोटे बालक तो हमेशा उत्पात करते ही रहते हैं परंतु बड़ों को अपना बड़प्पन रखते हुए उन्हें क्षमा कर देना चाहिए। इस दोहे का अर्थ अत्यंत विस्तृत है। हरि (प्रभु) से लेकर मनुष्य तक इसका विस्तार है। प्रचलित पौराणिक कथा के अनुसार विष्णु जी की दया और क्षमा भावना की कथा सुनकर भृगु ऋषि उनकी परीक्षा लेने बैकुंठ लोक पहुँचे। भृगु ऋषि ने शेष शय्या पर लेटे विष्णु जी की छाती पर लात मारी। विष्णु जी ने उनके पैर पकड़कर उनसे प्रेमपूर्वक पूछा कि कहीं उनकी कठोर छाती के कारण भृगु के कोमल पैरों में चोट तो नहीं आ गई। श्री हरि के ऐसे व्यवहार से भृगु लज्जित हुए। संसार ने भृगु के इस कृत्य की निंदा की और श्री हरि की प्रशंसा। रहीम कहते हैं कि भृगु के इस कृत्य से विष्णुजी का कुछ नहीं बिगड़ा बल्कि उनके बड़प्पन के लिए संसार सदैव उनके गुणों का गान ही करता रहा।

भृगु का एक अन्य अर्थ है– छोटा कीड़ा। हरि का अर्थ है– सिंह। यदि सिंह को एक छोटा कीड़ा पैर मार भी दे तो इससे सिंह का कुछ नहीं बिगड़ता। मनुष्य की महानता उसके

व्यवहार में ही समाहित है। मारने वाला सदैव निंदनीय होता है और क्षमा करने वाला सदैव महान। यह तथ्य युगों-युगों से प्रमाणित रहा है कि क्षमा करने वाला ही महान होता है। इतिहास में इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं जहाँ सिकंदर विश्व विजेता भले ही हो पर लोग याद आज भी अकबर को ही करते हैं जिसने सभी धर्मों को समान स्थान दिया। विश्व क्रूर और हिंसक की अपेक्षा शांत एवं क्षमाशील प्राणियों के कारण ही विकास कर रहा है। रहीम प्रत्येक युग के सत्य को अपनी वाणी द्वारा अमर कर देते हैं।

विशेष

रहीम की वाणी काल विशेष तक सीमित न रहकर युग-युगांतर तक प्रासंगिक रहेगी। क्रोध तामसिक और क्षमा सात्विक गुण इसीलिए माने गए हैं। संत स्वभाव क्षमाशील ही माना गया है। कबीर भी क्षमा को ही मनुष्य का गुण मानते हुए कहते हैं– 'कबीरा सोइ पीर है जो जाने परपीर/जो पर पीर ना जानइ सो काफिर बेपीर।'

- **जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग। ...**

व्याख्या

रहीम कहते हैं कि जिनका स्वभाव उत्तम होता है वे बुरी संगति के प्रभाव में अपने गुण का त्याग नहीं करते। जिस प्रकार चंदन के पेड़ से साँप लिपटे रहने पर भी चंदन का पेड़ जहरीला नहीं हो जाता। चंदन का स्वभाव है– उसकी शीतलता एवं सुगंध। वर्षों से चंदन पर लिपटे रहने पर भी सर्प का विषैलापन चंदन में नहीं आता। यही उत्तम प्रकृति के लोगों

का स्वभाव होता है। रावण के साथ बरसों-बरस रहने पर भी विभीषण का स्वभाव नहीं बदला। वे तब भी प्रभु के ध्यान में अपने स्वभाव के अनुसार ही संलग्न रहे।

विशेष

रहीम के कथनों की यह विशेषता है कि जनश्रुति के अनुरूप प्रचलित उदाहरणों से उनकी बातों की सहजता से पुष्टि हो जाती है।

- **तरुवर फल नहीं खात हैं, सरवर पियहिं न पान। ...**

व्याख्या

पेड़ अपने फल स्वयं नहीं खाते। तालाब अपना जल स्वयं नहीं पीते। रहीम कहते हैं कि सज्जन व्यक्ति भी इनकी भाँति अपनी संपत्ति को केवल स्वयं तक सीमित नहीं रखते बल्कि समाज के लिए इसका प्रयोग करते हैं। रहीम समाज के विकास का सीधा सूत्र देते हैं। व्यक्ति यदि स्वयं के बारे में ही सोचता रहे तो वह आत्मकेंद्रित हो जाता है। समाज का भला तभी हो सकता है जब बड़े लोग छोटे की सहायता करें और वह भी निःस्वार्थ भाव से, ठीक प्रकृति की भाँति! जिस प्रकार प्रकृति निःस्वार्थ भाव से दान देती है, कभी भी किसी दान के बदले कुछ नहीं माँगती। सज्जन मनुष्य भी उसी प्रकार निर्मल भाव से समाज की बेहतरी के लिए ही कार्य करते हैं।

विशेष

रहीम अपनी बात को उदाहरण देकर समझाते हैं। रहीम ने अकबर की दान वृत्ति को देखा था और स्वयं भी वे अत्यंत दानी थे। वे स्वयं यह प्रयास करते थे कि एक हाथ से दिए गए

दान के बारे में दूसरे हाथ को पता न चले। कवि गंग ने भी उनकी इसी वृत्ति से प्रभावित होकर उनकी प्रशंसा की थी। रहीम अन्यत्र भी कहते हैं, 'रहिमन वे नर मर गये, जे कछु माँगन जाहि/उनते पहिले वे मुये, जिन मुख निकसत नाहि।' प्रकृति को वे सबसे बड़ा दानी मानते हैं। प्रकृति के समान वृत्ति को ही वे सराहते हैं।

- **प्रेम पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं। ...**

व्याख्या

प्रेम की राह अत्यंत कठिन है। इसका निर्वाह करना सरल नहीं है। रहीम उदाहरण देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार मोम के घोड़े पर चढ़कर आग का दरिया पार नहीं किया जा सकता, ठीक उसी प्रकार प्रेम की राह पर चलना अत्यंत कठिन है। रहीम जगत्प्रसिद्ध प्रतीकों से अपनी बात को पुष्ट करने के लिए जाने जाते हैं। मोम के घोड़े पर सवार होकर आग के पार नहीं जाया जा सकता। मोम पिघलकर खत्म हो जाएगी। ठीक उसी प्रकार प्रेम के पथ पर अनेक कष्ट हैं। इन कष्टों से निबाह कर पाना सबके बस की बात नहीं।

विशेष

प्रेम के संदर्भ में रीतिकाल के लगभग सभी विरह पक्ष के कवियों ने लिखा है। घनानंद का नाम इस संदर्भ में अत्यंत प्रसिद्ध है। रहीम ने भी बोधा की भाँति प्रेम पंथ को कराल माना है। वे प्रेम के संदर्भ में अन्यत्र भी लिखते हैं, 'रहिमन' पैड़ा प्रेम को, निपट सिलसिली गैल। बिलछत पांव पिपीलिको, लोग लदावत बैल।'

- **रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस। ...**

व्याख्या

रहीम कहते हैं कि जो वास्तव में बड़ा होता है उसमें तनिक भी गर्व नहीं होता। शेषनाग पूरी पृथ्वी का भार ग्रहण करते हैं परंतु उन्हें फिर भी इस बात का गर्व नहीं। सारे संसार का भार लेने पर भी वे शेष ही कहलाते हैं। रहीम पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग करते हैं। शेषनाग को मिथकीय आधार पर इस पृथ्वी का भार वाहक माना जाता है। इस आधार पर तो शेषनाग को गर्व और अहंकार से परिपूर्ण होना चाहिए! परंतु वे इसका अहंकार न करके स्वयं को शेष (नगण्य) ही मानते हैं। यही बड़े होने की कसौटी है। अहंकारी व्यक्ति कभी बड़ा नहीं हो सकता।

विशेष

बड़े लोगों की यही खासियत है कि वे कभी अभिमान से ग्रस्त नहीं होते। रहीम से गंग ने एक बार पूछा था कि दान देते वक्त वे नेत्र नीचे क्यों रखते हैं। रहीम ने उत्तर दिया कि देने वाला कोई और, लेने वाला कोई और। फिर भी न जाने क्यों लोग हमें महत्व देने लगते हैं। इसीलिए कहीं गलती से इन नेत्रों से अभिमान प्रकट न हो जाए इसीलिए मैं नेत्र नीचे रखता हूँ।

- **रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि। ...**

व्याख्या

रहीम कहते हैं कि बड़े की प्राप्ति हो जाने से छोटी वस्तु का मूल्य कम नहीं हो जाता। इसके लिए वे सुई और तलवार का दृष्टांत देते हैं कि जिस स्थान पर सुई का महत्व है वहाँ

तलवार किसी काम नहीं आती। प्रत्येक वस्तु की अपनी-अपनी उपयोगिता है। महती वस्तुओं के फेर में पड़कर सामान्य की उपेक्षा उचित नहीं है। कई बार सामान्य समझ कर जिन साधारण व्यक्तियों की उपेक्षा कर दी जाती है, समय आने पर वे ही अधिक सहायक होते हैं। वास्तव में बड़े और छोटे होने का संदर्भ समय के अनुरूप ही तय होता है। सुई के स्थान पर तलवार का उपयोग संभव नहीं ।

विशेष

मनुष्य अक्सर अपने आसपास के छोटे छोटे सामान्य दीखने वाले व्यक्तियों की उपेक्षा करता है पर भूल जाता है कि वानर दीखने वाली साधारण प्रजातियों ने ही राम को रावण जैसे शासक के विरुद्ध युद्ध जितने में सहायता की थी। दृष्टांत का प्रयोग प्रायः रहीम के सभी दोहों में किया गया है।

- **रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय। ...**

व्याख्या

रहीम कहते हैं कि प्रेम रूपी धागे को कभी भी तोड़ना उचित नहीं है। यदि इस संबंध पर एक बार आँच आ गई तो उसे पुनः जोड़ना संभव नहीं होता है। यदि जोड़ा भी जाए तो भी धागे में जैसे गाँठ लगाए बिना उसे जोड़ा नहीं जा सकता, वैसे ही प्रेम संबंधों में भी गाँठ पड़ जाती है। रहीम का यह बहुश्रुत दोहा प्रेम जैसे नाजुक संबंध की अत्यंत कोमलता से पड़ताल करता है। यह अक्सर कहा जाता है कि प्रेम संबंधों में गाँठ पड़ने पर उसका जुड़ना संभव नहीं होता, पर यह गाँठ किस तरह की है? यह गाँठ है– मैं रूपी अहंकार की। अहंकार

रूपी शत्रु प्रत्येक संबंध का घातक है। समस्त भक्त कवियों से लेकर रीतिमुक्त कवियों ने इस मैं रूपी अहंकार के त्याग पर बल दिया है।

विशेष

'प्रेम गली अति सांकरी ता में दो न समाय' जैसे वाक्यों में भी प्रेम का ही महत्व प्रतिपादित किया गया है। यद्यपि यहाँ रहीम गाँठ पड़ने की बात कह रहे हैं पर अन्यत्र वे कहते हैं कि 'सुजन' को मनाने का हर प्रयास करना चाहिए जिससे संबंध बना रहे। रहीम के इन दोनों दोहों को क्रमशः पढ़ा जाना चाहिए।

- **रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय। ...**

व्याख्या

रहीम कहते हैं कि अपनी पीड़ा को कभी दूसरों के समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिए। लोग उस पीड़ा के सहभागी नहीं बनते बल्कि पीठ पीछे व्यथा का परिहास ही करते हैं। रहीम लोक व्यवहार से पुष्ट सत्य और तथ्य को स्थापित करते हैं। स्वयं अत्यंत अनुभवी और लोक व्यवहार के पारखी होने के कारण ऐसे कई अनुभवों से वे स्वयं भी गुजरे होंगे। जिस लोक और समाज के भय से हम हमेशा पीड़ित रहते हैं वही पीड़ा होने पर साथ नहीं देता बल्कि हास-परिहास का कोई अवसर नहीं छोड़ता।

विशेष

इसी से मिलती जुलती बात रहीम अन्यत्र भी कहते हैं कि कुछ समय की विपदा अवश्य होनी चाहिए जिससे इस समाज में अपने और पराए की पहचान हो सके।

- **रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून। ...**

व्याख्या

रहीम के इस दोहे को अनेकार्थी माना जाता है। पानी के तीन अर्थ हैं– जल, आभा और प्रतिष्ठा। मोती, मनुष्य और आटा तीनों में पानी की आवश्यकता होती है। इसके बिना तीनों का कोई महत्व नहीं। पानी की महत्ता का वर्णन इस पद में किया गया है। पानी के बिना अस्तित्व संकट में पड़ जाता है। आटे को काम में लाने के लिए जल का होना अनिवार्य है। जल के बिना ये उबरते नहीं अर्थात रह नहीं पाते।

विशेष

(i) मनुष्य के संदर्भ में यहाँ पानी प्रतिष्ठा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, मोती के संदर्भ में आभा के अर्थ में तथा आटे (चूना) के संदर्भ में उपयोगितापरक अस्तित्व (सार्थकता का प्रश्न) के संदर्भ में।

(ii) यमक अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(iii) मनुष्य के गुणों की तुलना मोती की आभा से की गई है।

- **रहिमन बिपदाहू भली, जो थोरे दिन होय। ...**

व्याख्या

रहीम कुछ समय के लिए विपत्ति के आगमन को जीवन के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं। इससे अपने और पराए की पहचान आसानी से हो जाती है। रहीम अपनों की पहचान विपत्ति में ही

संभव मानते हैं। विपत्ति पड़ने पर जो साथ दे, उसे ही मित्र कहा जा सकता है। इस पहचान के लिए कुछ समय की विपदा भी आनी चाहिए जिससे अपने नजदीकी रिश्तों की भी पहचान की जा सके।

विशेष

तुलसी भी धीरज, धर्म और मित्र की पहचान कष्ट में ही संभव मानते हैं। कुछ वैसा ही भाव रहीम भी प्रकट कर रहे हैं।

- **रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं। ...**

व्याख्या

रहीम के अनुसार वे मनुष्य अत्यंत हीन हैं जो भिक्षा माँगकर जीवन निर्वाह करते हैं। परंतु उनसे भी अधिक विपन्न और हीन वे हैं जो माँगने वाले की सहायता नहीं करते।

यहाँ माँगने वाले की विवशता का संदर्भ है। रहीम कहते हैं कि अत्यंत विवश हो कर ही अर्थात अपने व्यक्तित्व और स्वाभिमान को समाप्त कर, मिटा कर (मार कर) ही कोई मनुष्य कहीं माँगने जाता है, अपने को माँगने के लिए तैयार करता है अर्थात कोई भी स्वेच्छा से कुछ नहीं माँगने नहीं जाता, जब सब रास्ते बंद हो जाते हैं, कोई उपाय नहीं बचता तभी जन माँगने के लिए स्वयं को तैयार करता है, परंतु जो लोग माँगने वाले की विवशता के प्रति संवेदनहीन हो कर उसे देने से इंकार कर देते हैं, वे तो पहले ही मर जाते हैं। यहाँ रहीम याचना के प्रति संवेदनहीनता को रेखांकित करते हैं। वे संदेश देते हैं कि मनुष्य होने का अर्थ यह है कि माँगने वाले की विवशता समझ कर उसकी यथासंभव सहायता करें।

विशेष

ईश्वर ने जिन्हें याचक बनाया है उनकी स्थिति से बुरी स्थिति रहीम उनकी मानते हैं जिनके पास सब कुछ होते हुए भी वे किसी की सहायता नहीं करते। आगत की रक्षा की मनुष्य धर्म है।

बोध प्रश्न

10. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए।

(क) रहीम विपत्ति को भी कुछ समय के लिए जरूरी क्यों मानते हैं?

.....

.....

(ख) रहीम के दोहे में पानी शब्द के तीन अर्थ क्या-क्या हैं?

.....

.....

(ग) सुई और तलवार के दृष्टांत से रहीम क्या समझाना चाहते हैं? स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

(घ) रहीम बड़े लोगों की पहचान की क्या कसौटी निर्धारित करते हैं? स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

11. रहीम नीति काव्य के माध्यम से अपने काल के शासकों को ही नहीं आज के शासकों को भी राह दिखाने में समर्थ हैं, टिप्पणी कीजिए । (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12. रहीम के काव्य की प्रासंगिकता पर विचार कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7.7 सारांश

- रहीम के काव्य का विस्तार भक्तिकाल से लेकर रीतिकाल तक है। नीति, श्रृंगार और वीरता से पूर्ण इनकी रचनाएँ जीवन का मार्गदर्शन करने में समर्थ हैं।
- वैभवकालीन समृद्धि के बीच पले-बढ़े रहीम ने अकबर के काल में अनेक युद्ध लड़े, खानखानाँ की उपाधि पाई, शासक के कोपभाजन बने, जहाँगीर द्वारा दिए गए कारावास का दंड भी भोगा, खानखानाँ की उपाधि गँवाई और पुनः वापस पाई तथा जहाँगीर की प्रशंसा में काव्य रचना भी की।
- रहीम का समय दरबार और दरबारी कविता को केंद्र में रखता है। मध्ययुगीन समाज जहाँ एक ओर शासकों द्वारा प्रश्रय दिए गए काव्य और प्रशंसामूलक साहित्य के बीच बनता समाज था वहीं अकबर की उदार नीतियों से लेकर जहाँगीर की विलास और कलाप्रियता तक विस्तृत काल था।
- रहीम के काव्य में छोटे-छोटे दोहे और बरवै जीवन जीने के सूत्र देते हैं। व्यावहारिक जीवन के सूत्र रहीम की कविता में सर्वत्र मौजूद हैं। कुम्हार का चाक उनकी कविता में मौजूद है, 'रहिमन चाक कुम्हार के, मांगे दिया न देई', वहीं संगति चयन की सीख भी है। रहीम ओछे आदमी से मित्रता एवं शत्रुता दोनों ही न करने की सीख देते हैं क्योंकि श्वान का काटना और चाटना दोनों ही मनुष्य के लिए घातक है।
- रहीम जगत प्रसिद्ध उदाहरणों से अपनी बात पुष्ट करते हैं। पेड़ का प्रसिद्ध उदाहरण देकर वे समझाते हैं कि मनुष्य यदि पेड़ की जड़ को सींचता है तो उससे फल और फूल स्वयं ही मिल जाते हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि लक्ष्य का सही ज्ञान होना भी आवश्यक है। यदि लक्ष्य पर ध्यान न हो तो प्रयत्न करने पर भी व्यक्ति जीवन भर सफल नहीं हो पाता।

7.8 उपयोगी पुस्तकें

- *रहीम ग्रंथावली*– विद्यानिवास मिश्र; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- *रहीम के दोहे*– आबिद रिजवी; मनोज प्रकाशन, दिल्ली
- *हिंदी नीतिकाव्य का स्वरूप और विकास*– रामस्वरूप शास्त्री; हिंदी पुस्तक सदन, दिल्ली

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) ×

   (ख) ✓

   (ग) ×

   (घ) ✓

2. देखिए– भाग 7.2

3. देखिए– भाग 7.2

4. (क) रहीम की ज्योतिष संबंधी पुस्तक का नाम 'खेट कौतुक जातमक' है।

   (ख) रहीम की फारसी रचनाएँ हैं– 'वाकेआत बाबरी' तथा फारसी दीवान'।

   (ग) विद्यानिवास मिश्र ने सम्मेलन पत्रिका से प्राप्त 'मदनाष्टक' को आधार बनाया।

5. देखिए– भाग 7.3

6. (क) नीति काव्य

   (ख) बरवै

(ग) गार्हस्थ्य

(घ) नीतिगत संदेश

7. देखिए– भाग 7.4

8. देखिए– भाग 7.4

9. देखिए– भाग 7.5

10. देखिए– भाग 7.5

11. देखिए– भाग 7.5

12. देखिए– भाग 7.5

13. (क) रहीम विपत्ति को कुछ समय के लिए इसलिए जरूरी मानते हैं कि उनके अनुसार विपत्ति में ही अपनों की पहचान संभव है।

(ख) पानी शब्द के तीन अर्थ हैं– जल, आभा और प्रतिष्ठा।

(ग) सूई और तलवार के दृष्टांत से रहीम छोटे व्यक्ति की उपेक्षा न करने की सलाह देते हैं।

(घ) रहीम बड़े लोगों की कसौटी अभिमान से ग्रस्त नहीं होना बतलाते है।

14. इस प्रश्न का उत्तर पूरी इकाई को पढ़कर तैयार कीजिए।

15. इस प्रश्न का उत्तर पूरी इकाई पढ़कर तैयार कीजिए।

इकाई 8 मीरांबाई का काव्य

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्‌देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 मीरांबाई का जीवन परिचय

8.3 मीरांबाई की रचनाएँ

8.4 मीरांबाई के काव्य में भक्ति

8.5 मीरांबाई के काव्य में स्त्री चेतना

8.6 मीरांबाई की काव्य भाषा

8.7 मीरांबाई का काव्य सौंदर्य

8.8 मीरांबाई की कविता का वाचन और आस्वादन

8.9 सारांश

8.10 उपयोगी पुस्तकें

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्‌देश्य

मध्यकालीन कृष्णभक्त कवयित्री मीरांबाई अनन्य भक्त और उत्कृष्ट रचनाकार दोनों रूपों में लोकप्रिय हैं। प्रस्तुत इकाई में उनके विषय में विस्तार से चर्चा की गई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- मीरांबाई के व्यक्तित्व व कृतित्व को समझ सकेंगे;
- मीरांबाई की भक्ति भावना की विशिष्टता को पहचान सकेंगे;
- स्त्री भक्त के रूप में मीरांबाई की विशिष्टता तथा समाज और स्त्री के रूप में उनके परस्पर संबंधों को जान सकेंगे;
- मीरांबाई के भाषा संबंधी प्रयोगों को समझ सकेंगे तथा उनके काव्य-सौंदर्य को ग्रहण कर सकेंगे; तथा
- मीरांबाई के काव्य का आस्वादन कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

भक्ति की तन्मयता और माधुर्य के संचित कोश के रूप में कृष्ण भक्ति परंपरा में मीरांबाई सर्वथा प्रथम एवं विशिष्ट हैं। कृष्ण के प्रति इनका समर्पण तथा सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती, पूरे मध्यकाल में इन्हें अलग पहचान देती है। संप्रदायवाद के किसी भी दायरे से अलग मीरां अपनी पहचान बनाती हैं। प्रेमाभक्ति के चरम आकर्षण और स्वच्छंदता के अपने वैयक्तिक गुण से मीरांबाई समस्त भक्ति परंपरा की अमूल्य निधि बन बैठती हैं। प्रस्तुत इकाई में मीरां के इसी प्रभावी कवि व्यक्तित्व एवं उनके काव्य के विविध पक्षों की चर्चा की जा रही है।

8.2 जीवन परिचय

संत परंपरा और मध्यकालीन भक्ति साहित्य में मीरांबाई अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं एवं अपने व्यक्तित्व व कृतित्व दोनों के लिए सम्मान की दृष्टि से देखी जाती हैं। राजपरिवार में जन्म और पालन-पोषण के बावजूद कठोर संघर्ष झेलती मीरांबाई राजसत्ता एवं तमाम सामाजिक-पारिवारिक जकड़बदियों को तोड़ती हैं। जीवनानुभव की आँच और भक्ति की

अनन्य तन्मयता से शक्ति की विशेष रचनात्मक ऊर्जा अर्जित करती हुई वे कबीर, सूर और तुलसी जैसे भक्त कवियों की अग्रिम पंक्ति में स्थान प्राप्त करती हैं।

मीरांबाई का जीवनवृत्त अन्य मध्यकालीन कवियों की ही तरह साक्ष्य प्रमाणों के अभाव में पूर्णतः निश्चित नहीं है। उनके जीवनवृत्त को जानने के लिए विद्वानों ने जनश्रुतियों का आश्रय लिया है। स्वयं मीरांबाई के पदों से भी उनके जीवन के अनेक संदर्भों के संकेत मिलते हैं। सभी अनिश्चितताओं के बीच यह स्पष्ट है कि वे राजपूताने के प्रसिद्ध राजकुल में जन्मीं। मेड़ता के नरेश राव दूदा मीरांबाई के दादा थे। लगभग 1498 ई. में कुड़की नामक गाँव में मीरांबाई का जन्म माना जाता है। स्वयं मीरांबाई के पदों में उनके मेड़ता के होने का उल्लेख मिलता है। वे राव दूदा के छोटे पुत्र रत्नसिंह की पुत्री थीं। जनश्रुति के अनुसार छोटी उम्र में ही उनकी माँ का देहांत हो गया। माता की मृत्यु और युद्धों में पिता की व्यस्तता के कारण इनका पालन-पोषण मेड़ता में इनके दादा की देख-रेख में होने लगा। दादा राव दूदा के धार्मिक संस्कारों ने ही नन्ही बालिका के हृदय में कृष्णभक्ति के बीज पल्लवित-पुष्पित किए। कहा जाता है कि एक बार विवाहोत्सव को देख उत्सुकता में नन्ही मीरांबाई ने अपने वर के विषय में बालसुलभ प्रश्न पूछा। उत्तर में माँ ने कृष्ण की मूर्ति की ओर संकेत कर दिया। इस तरह परिवार के स्वाभाविक धार्मिक झुकाव के मध्य मीरां का कृष्ण-प्रेम गहरा होता गया। 1516 ई. में राणा सांगा की पुत्रवधू और भोजराज की पत्नी के रूप में वे जब मेवाड़ पहुँची तो माना जाता है कि कृष्ण की मूर्ति उनके हाथों में ही थी। कृष्ण उपासना बेरोक-टोक जारी रही। मीरांबाई का दांपत्य जीवन भी लंबा न रहा। एक के बाद एक परिजनों की मृत्यु के आघात ने मीरांबाई के जीवन में सांसारिकता के प्रति आकर्षण नष्ट कर दिया। फलतः संसार की निःसारता का बोध और अलौकिक के प्रति प्रेम का भाव भी दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया। वे

भगवद् भजन में समय बिताने लगीं। कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ समर्पण ने उन्हें सांसारिक बंधनों से विमुक्त कर दिया। मीरांबाई की ख्याति बढ़ने लगी। पारिवारिक बंधनों को न स्वीकार करने के उनके उन्मुक्त भक्त व्यवहार ने अनेक कष्टों को न्यौता दिया। ननद ऊदाबाई और राणा विक्रमाजीत सिंह द्वारा किए गए षड्यंत्रों की अनेक कथाएँ जनश्रुतियों में मौजूद हैं। स्वयं मीरांबाई के पदों में भी साक्ष्य मिलते हैं :

राणा जी थे जहर दियो म्हे जाणी।

या

साँप पिटारा राणा भेज्या...।

1534 ई. में मीरांबाई ने मेवाड़ छोड़ दिया और मेड़ता वापस आ गईं। कीर्तन-भजन व भक्ति के मधुर गीतों की रचना में लीन मीरांबाई यहाँ भी लंबे समय तक न टिक सकीं और सभी बंधनों को पीछे छोड़कर उन्मुक्त भाव से कृष्णभक्ति के गीत गाते तीर्थाटन पर निकल पड़ीं। इस समय वृंदावन में इनकी भेंट जीव गोस्वामी से हुई। कहा जाता है कि चेतना संप्रदाय के जीव ग़ोस्वामी द्वारा मीरांबाई से मिलने से इनकार करने पर (वे स्त्रियों से नहीं मिलते थे) उन्होंने संदेश भेजा कि मैं समझती थी कि वृंदावन में मात्र एक ही पुरुष हैं, शेष सभी गोपियाँ हैं। यह हैरानी की बात है कि यहाँ अपने को पुरुष समझने वाला कोई और भी है। यह सुनकर जीव गोस्वामी का अहंकार टूट गया और मीरांबाई के स्वागत में तुरंत बाहर आए। इसके पश्चात मीरांबाई के द्वारका यात्रा के उल्लेख मिलते हैं। इस समय तक वे पर्याप्त लोकप्रिय हो चुकी थीं। दूसरी ओर मेड़ता और मेवाड़ के बिगड़ते हालातों और समस्याओं से दुखी प्रजा इसे मीरांबाई के साथ हुए व्यवहार का परिणाम मानने लगी। उन्हें वापस लाने की योजना से ब्राह्मणों को द्वारका भेजा गया। मीरांबाई द्वारा बार-बार मना करने पर भी ब्राह्मणों

ने उन्हें लौटने के लिए विवश किया। एक किंवदंती के अनुसार अधिक विवश करने पर मीरांबाई रणछोड़जी (कृष्ण) से मिलने का बहाना कर मंदिर के भीतर गईं, कपाट बंद किए और रणछोड़जी की मूर्ति में ही समा गईं। इस तरह मीरांबाई कब तक जीवित रहीं इसके भी कोई निश्चित प्रमाण नहीं हैं किंतु माना जाता है कि 1563 ई. के आसपास तक वे जीवित रही थीं। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अभाव में ऐसी किंवदतियों का बन जाना स्वाभाविक है। अंततः इस अनिश्चितता के मध्य इतना तो स्पष्ट है कि मीरांबाई अपने जीवनकाल में ही भक्त एवं कवि के रूप में विशिष्ट प्रसिद्धि और सम्मान पा चुकी थीं। कृष्ण प्रेम में एकाकार उनके व्यक्तित्व के साथ यदि ऐसी किंवदंती बनती भी है तो इसमें आश्चर्य नहीं। इस सबके बीच प्रेमाभक्ति में निमग्न उनके मधुर गीतों की आकंठ ध्वनि आज भी उन्हें जन-मन के बीच जीवित रखे हुए है।

8.3 मीरांबाई की रचनाएँ

मीरांबाई के जीवनवृत्त की ही तरह उनकी रचनाओं के संबंध में भी हमें कोई प्रामाणिक दस्तावेज नहीं मिलते। उनके नाम से अनेक रचनाओं के उल्लेख यत्र-तत्र मिलते हैं, जिनमें 'मीरांबाई की पदावली', 'गीतगोविंद की टीका', 'नरसी जी का मायरा', 'राग सोरठ पद-संग्रह', 'राग गोविंद', 'मीरांबाई का मलार', 'गर्वागीत', 'राग विहाग' एवं 'फुटकर पद' आदि शामिल हैं। इस संबंध में कई विद्वानों ने विभिन्न पुस्तकों की चर्चा की है। मुंशी देवीप्रसाद ने जब राजस्थान में हिंदी की पुस्तकों की खोज की तब 'गीतगोविंद की टीका', 'नरसी जी का मायरा', 'रागसोरठ के पद-संग्रह' एवं 'फुटकर पद' को ही मीरांबाई की रचनाओं के रूप में पाए जाने का उल्लेख किया। जबकि रामचंद्र शुक्ल अपने साहित्येतिहास में 'राग गोविंद' का

उल्लेख करते हैं। दूसरी ओर गौरीशंकर हीराचंद ओझा 'मीरांबाई का मलार' की प्रसिद्धि के विषय में चर्चा करते हैं।

साहित्यिक दृष्टि से यदि देखें तो मीरांबाई के फुटकर पद ही सबसे अधिक महत्व के हैं। ये संभवतः जनसामान्य में प्रचलित उनके गीतों का ही संग्रहण है। सर्वप्रथम श्री कृष्णानंद देव व्यास ने मीरांबाई के उन पदों को 'राग कल्पद्रुम' में सम्मिलित किया जो बंगाल, गुजरात व राजस्थान में जन प्रचलित थे। तत्पश्चात मुंशी देवीप्रसाद ने राजस्थान से कुछ ऐसे पद खोज निकाले जो ऐतिहासिक दृष्टि से 'राग कल्पद्रुम' से कुछ पुराने थे। हिंदी में केवल मीरांबाई के पदों का सबसे पहला संग्रह लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से 1898 ई. में 'मीरांबाई के भजन' नाम से प्रकाशित हुआ था। आगे चलकर बेलतेडियर प्रेस, प्रयाग से 1910 ई. में 'मीरांबाई की शब्दावली' नाम से एक प्रामाणिक संग्रह प्रकाशित हुआ जिसमें उनके 137 पद संगृहित हैं। इन आरंभिक प्रयासों के बाद मीरांबाई के पदों के संकलन के अनेक प्रयास हुए, जिनमें 'मीरां मंदाकिनी', 'मीरां स्मृति ग्रंथ', 'मीरां सुधा सिंधु', 'मीरां वृहद पद' संग्रह आदि के साथ 1932 ई. में परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'मीरांबाई की पदावली' (हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) है। यह संग्रह बेहद मेहनत से तैयार किया गया है और वस्तुतः इसे ही मीरांबाई के अब तक प्राप्त पदों का सबसे प्रामाणिक संग्रह माना जाता है। इस संग्रह में मीरांबाई के कुल 202 पद शामिल किए गए हैं। वैसे मीरांबाई के नाम से प्रचलित पदों की संख्या अधिक नहीं है। इनकी संख्या 25 से 500 के बीच कुछ भी हो सकती है। वह भी तब जब गुजराती में मिले उनके पदों को भी इस गणना में शामिल कर लिया जाए।

कुल मिलाकर अनेक रचनाओं की नाम गणना और संग्रह के बाद भी मीरांबाई के पद ही उनकी प्रामाणिक रचनाएँ हैं, परंतु इनमें भी मूल रूप से मीरां के लिखे पदों की संख्या संभवतः

बहुत कम है। अधिकांश पदों की प्रामाणिकता पर संदेह है। मीरां अपने जीवनकाल में ही प्रसिद्धि के चरम उत्कर्ष पर थीं और बाद में भी भक्ति रस से सने उनके कंठमधुर गीत जनमानस में इतने घुल-मिल गए थे कि प्रामाणिकता पर संदेह अवश्यंभावी है। गुजरात से लेकर बंगाल तक उनका व्यापक प्रभाव पड़ा था। जैसे कबीर के नाम से हम अनेक निर्गुण पदों के होने की बात करते हैं, ठीक उसी प्रकार मीरां के 'प्रभु गिरधर नागर' लिखकर माधुर्य भाव के अनेक पदों के प्रचलन की चर्चा मिलती है। मौखिक परंपरा में प्रचलित ये गीत संभवतः मीरांबाई के गीत मान लिए गए हों। विद्वानों का विचार है कि ऐसे सभी सैकड़ों पदों की रचनाकार मीरांबाई स्वयं नहीं हैं अपितु मीरांबाई की-सी भक्ति-भावना रखने वालों के लिए वे प्रतीक रूप में उनके पदों में विद्यमान हैं, यही अस्पष्टता या संदेह का कारण माना जा सकता है। स्थिति जो भी हो किंतु अप्रामाणिकता के तमाम तर्कों के बाद भी मीरांबाई और मीरांबाई की पदावली विद्वानों और सामान्य पाठकों के बीच विशिष्ट महत्व रखती हैं। भक्ति रस में डूबे ये पद अपने विनय, प्रेम, रहस्य आदि के दृढ़ भावों के साथ साहित्य की विशेष निधि हैं।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सही (✓) अथवा गलत (×) के चिह्न लगाकर दीजिए।

   (क) मीरांबाई का जन्म मेड़ता में हुआ। ( )

   (ख) विवाह के बाद मीरांबाई का सांसारिकता में मन नहीं रमा। ( )

   (ग) 1550 ई. में मीरांबाई ने मेवाड़ छोड़ा। ( )

   (घ) 1563 ई. के आसपास तक मीरांबाई जीवित रहीं। ( )

(ङ) 'मीरांबाई की पदावली' 1950 ई. में परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित की गई। ( )

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर पाँच-पाँच पंक्तियों में दीजिए।

(क) मीरांबाई में भक्ति का संस्कार किस प्रकार आया?

.....

.....

.....

.....

.....

(ख) मीरांबाई की पुस्तकों के नाम बताइए?

.....

.....

.....

.....

.....

8.4 मीरांबाई के काव्य में भक्ति

मीरांबाई मूलतः भक्त हैं, कवयित्री नहीं। वैष्णव परंपरा के बाल्यकालीन संस्कार, युगीन परिस्थितियों व विचारधारा एवं वैयक्तिक जीवनानुभवों ने क्रमशः मीरां को भक्ति के मार्ग पर प्रशस्त किया है। यों मीरांबाई की दीक्षा किसी संप्रदाय विशेष में नहीं है किंतु कृष्ण के प्रति उनके हृदय में गहन अनुराग का उनका भाव है जो धीरे-धीरे परिपक्व होकर एकनिष्ठ भक्ति का रूप धारण करता है।

भक्ति अज्ञात सत्ता या परमात्मा के प्रति जीवात्मा की सहज रागात्मक वृत्ति या भाव का ही दूसरा नाम है। इस अलौकिक रागात्मकता को रामचंद्र शुक्ल हृदय का धर्म कहते हैं। इस रागात्मक भाव या संबंध की कल्पना भक्तों ने कई प्रकार से की है। वस्तुतः मनुष्य के संसार में जितने भी प्रकार के संबंध संभव हैं उनकी संभावना भक्त और ईश्वर के बीच भी की गई है। स्त्री-पुरुष का परस्पर राग भाव या दांपत्य भाव भी इन्हीं में से एक है और यह भक्ति भावना के लिए सहज स्वीकार्य रहा है। मीरांबाई ने अपने आराध्य कृष्ण की भक्ति इसी भाव से भर कर की है।

शास्त्रीय अर्थों में भक्ति के इस स्वरूप को प्रेमाभक्ति, मधुरा भक्ति आदि नामों से जाना जाता है। किंतु मीरांबाई की भक्ति को केवल शास्त्रीय विधान में आँकने का प्रयास नहीं किया जा सकता। दरअसल मीरांबाई का भक्त रूप और उनकी श्री कृष्ण से अनन्यता अनुभूति की चरम सीमा को छूती है। इनमें रागात्मकता का ऐसा गहरा संस्पर्श है कि उसे किसी भी बने-बनाए सैद्धांतिक साँचे में फिट नहीं किया जा सकता। उसके विश्लेषण का आधार सैद्धांतिक न होकर अनुभूतिपरक ही अधिक होना चाहिए। ऐसा किए जाने का एक अन्य कारण यह भी है कि मीरांबाई भक्ति के किसी भी संप्रदाय या पंथ में औपचारिक रूप से दीक्षित नहीं हैं। वे भक्ति के सैद्धांतिक व्यवहारों से मुक्त हैं और भावना में बह कर भक्ति के अथाह सागर में स्वच्छंद गोते लगाती हैं। यों मीरांबाई के पाठकों व आलोचकों ने उनकी भक्ति को प्रेमाभाव की ही भक्ति माना है। स्वयं मीरांबाई के पदों से इसकी पुष्टि की जा सकती है। वे प्रेम स्वरूप भक्ति को ही एकमात्र पंथ मानती हैं :

प्रेमभगति रो पैंडो म्हारो और न जाणौं रीत।

मीरांबाई की भक्ति भावना वस्तुतः कृष्ण के प्रति उनके अगाध प्रेम का ही उदात्त रूप है। उसमें किसी भी प्रकार के दार्शनिक आग्रह से अधिक अनुराग के भाव को तन्मयता से व्यक्त किया गया है। इस तन्मयता में आत्मसमर्पण और एकात्म होने की स्थिति है :

तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं, जैसे सूरज घामा।

अथवा

मैं साँवरे के रंग रांची।

ऐसा नहीं है कि मीरांबाई का काव्य संसार शास्त्रीय विधानों से एकदम अछूता है परंतु उसका एकमात्र कारण उनके अपने अनुभव जगत का विस्तार है जो उन्होंने साधु-संन्यासियों की संगत से अर्जित किया है। जाहिर है वह भी जिस अंतरंगता के साथ आता है कि उसमें शास्त्र का बोझिल व्यवहार शामिल हो जाता है :

गगन मण्डल में सेज पिया की केहि बिधि मिलणा होइ।

इस भक्ति के तीन बड़े आकर्षण हैं– पहला, भक्त और भगवान के बीच दांपत्य का राग या रति भाव; दूसरा, कृष्ण का मनमोहक रूप तथा तीसरा, लीला के दर्शन। इस तरह कृष्ण प्रेम, कृष्ण सौंदर्य और कृष्ण लीला– ये मीरांबाई की भक्ति के मुख्य आयाम हैं। इन्हीं के आधार पर मीरांबाई भक्ति के मधुर रस में डूबे ऐसे गीतों का सृजन करती हैं जो आज तक भक्त हृदयों में समाए हुए हैं। दांपत्य राग में यह गीत तो सर्वप्रसिद्ध है :

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।

जाके सिर मोर मुकुट, मेरौ पति सोई।।

यह रति भाव संयोग से ज्यादा विरह-व्यथा के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। परमात्मा से मिलने की आस में पड़ी जीवात्मा के विरह की विदग्धता की अनन्य छवियाँ मीरांबाई गढ़ती हैं :

ज्ञान न भावे नींद न आवे, बिरह सतावे मोहि।

घायल सी घूमत फिरूँ रे, मेरो दरद न जाणे कोय।।

दूसरी ओर कृष्ण के मनमोहक रूप-सौंदर्य की व्यंजना के भी अनेक पद हैं जो भक्त जनों को (विशेष रूप से उन भक्तों को जो दार्शनिकता से ग्रस्त भक्त की जकड़ में न होकर भावनावश आकर्षित हैं) कृष्ण-प्रेम के मोहक पाश में बाँध लेते हैं। जीव जगत के दैनंदिन कष्टों से मुक्त करते हैं :

मेरो मन बसि गो गिरिधर लाल सों।

मोर मुकुट पीताम्बरो गल बैजन्ती माल।।

अथवा

निपट बँकट छवि अटके, मेरे नैना निपट बँकट छबि अटके।।

देखत रूप मदन मोहन के पियत पियूख न मटके।

हृदय की चरम उपलब्धि है :

कालिन्दी के तीर ही कान्हा गउवाँ चराय।

सीतल कदम की छहियाँ हो मुरली बजाय।।

यहाँ एक अन्य तथ्य ध्यान देने योग्य है। जब हम कह रहे हैं कि मीरांबाई की भक्ति शास्त्रीय विधान को तोड़ती हैं तो वह हर स्तर पर तोड़ती हैं। कृष्ण के मनमोहक स्वरूप और लीला की अनेकशः भावमय अभिव्यक्तियों के बावजूद मीरांबाई की भक्ति भावना जड़ अर्थों में सगुणोपासना नहीं है। वे पूर्णतया स्वच्छंदता की अपनी वैयक्तिक वृत्ति से परिचालित हैं और परंपरागत सगुण-निर्गुण में भेद को अनदेखा करती हैं। मीरांबाई के कृष्ण हमें सगुण-निर्गुण दोनों रूपों में दिखाई देते हैं। यों उन्हें अपने कृष्ण का सगुण साकार रूप ही अधिक प्रिय है और वे उसकी 'मोहिनी मूरत, सांवरी सूरत' पर न्योछावर होती हैं, बार-बार बलिहारी जाती हैं। किंतु कई पदों में उनके आराध्य निर्गुण रूप में विद्यमान हैं जिसका निवास स्थान गगन मंडल में है, जो अगम्य है और उससे मिलने का मार्ग दुर्गम है। मीरांबाई निर्गुण भक्ति की शब्दावलियों का बखूबी प्रयोग करती हैं :

ऊँचा-नीचा महल पिया का, ता मैं चढ़्या न जाई।

या

त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहाँ से झाँकी लगाऊँ री।

सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री।।

वैसे देखा जाए तो ऐसे पदों की संख्या सीमित ही है और ये पद साधु संगति के प्रभाववश प्रसंगतः ही रचे गए हैं। मीरांबाई के लिए महत्वपूर्ण ईश्वर का रूप-स्वरूप नहीं भक्ति की अनन्यता है। उन्हें तो अपने आराध्य कृष्ण को राम नाम से भी पुकारने में कोई हिचक नहीं– 'मेरा मन राम हि राम रटै रे।' उसकी अभिव्यक्ति जैसे बन पड़ी हो, उन्होंने की है। बिना किसी लागलपेट या मतवाद के फेर में पड़े। इस दृष्टि से उनमें नवधा भक्ति के पद भी देखे

जाने चाहिए। श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि सभी नौ सोपानों के अंकन मीरांबाई में मिल जाएँगे। उदाहरणस्वरूप :

कीर्तन

पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।

स्मरण

अब तो हरिनाम लौ लागी।

इस तरह मीरांबाई की भक्ति भावना और शास्त्रीयता दोनों का समन्वित आधार प्राप्त कर भक्त हृदय के सहज उद्‌गार के रूप में व्यक्त है।

बोध प्रश्न

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

   (क) मीरांबाई ने अपने आराध्य की भक्ति ..... भाव से की है।

   (ख) मीरांबाई की भक्ति का स्वरूप सैद्धांतिक न होकर ..... अधिक है।

   (ग) कृष्ण का प्रेम, सौंदर्य और ..... मीरांबाई की भक्ति के मुख्य आधार हैं।

   (घ) मीरांबाई के काव्य में संयोग से अधिक ..... का चित्रण है।

4. मीरांबाई की भक्ति की विशेषताएँ बताइए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5. मीरांबाई की भक्ति शास्त्रीयता का निषेध किस रूप में करती है? (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

8.5 मीरांबाई के काव्य में स्त्री चेतना

सामंती व्यवस्था की जकड़न एवं उसके बहुसंख्य निषेधों के मध्य मीरांबाई की कविताई स्त्री बोध और चेतना की अद्‌भुत मिसाल है। मीरांबाई एक ओर पितृसत्तात्मक सामंती व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल फूँकती हैं तो दूसरी ओर स्त्री जीवन के तमाम नियमन व शोषण-दमन के विरुद्ध तनकर खड़ी होती हैं। विरोध की यह ध्वनि ही मीरांबाई को स्त्री-चेतना का प्रतिनिधि स्वर बनाती है।

मीरांबाई का व्यक्तिगत जीवन हो या उसके सामाजिक संदर्भ प्रत्येक स्तर पर इनका जीवन विरोध और संघर्ष का इतिहास है। प्रत्येक मोर्चे पर वे तनकर खड़ी दीखती हैं। राजपरिवार में जन्मी और पली-बढ़ी मीरांबाई राजमहल की सुख-सुविधा को तिलांजलि देती हैं। सामाजिक प्रतिष्ठा को खोने के तथाकथित भय को एक किनारे छोड़ भक्ति के दुर्गम मार्ग को अपनाती हैं। यह भक्ति ही इनके लिए जीवन के तमाम संघर्षों का सामना करने की प्रेरक शक्ति का कार्य करती है। निरंकुश सामाजिक नियंत्रण के विरुद्ध यह भक्ति का अधिकार स्त्री के आत्मनिर्णय का अधिकार है। अपने जीवन के लिए स्वयं निर्णय लेने के इस अधिकार का ही प्रतिफल है कि घोर सामंती राजपूत राजघराने की एक विधवा स्त्री ईश्वर को अपने पति के रूप में न केवल चुनती है बल्कि उसकी घोषणा भी करती है, 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई। जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।।' यह मीरांबाई की खुली चुनौती है। परिवार, समाज, धर्म के ठेकेदार सभी के विरुद्ध।

विरोध में ये एक स्तर और चढ़ जाती हैं– स्त्री जीवन के परंपरागत दायरों को तोड़ कर! घर के घेरे को तोड़कर अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करती हैं। साधु संगति, कीर्तन, भजन और ईश वंदना में निमग्न मीरांबाई स्त्री जीवन के बने-बनाए दायरों को तोड़ती हैं। माँ, बहन, बेटी की स्त्री की परंपरागत भूमिका से पूरी तरह बाहर आकर एकमात्र कृष्ण-प्रेमिका की भूमिका में खुद को स्थापित करती हैं। इनकी कविता में लोक-लाज, कुल की मर्यादा तोड़ने और लाँघने के संदर्भ बार-बार यों ही नहीं आए हैं। ये तमाम संदर्भ पितृसत्ता को मीरांबाई का दिया गया करारा उत्तर है :

लोकलाज, कुल माण जगत की, दइ बहाय जस पाणी।

अपणे घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी।।

वे अपनी आस्था के संकल्प में भरी अपने विरोधियों को चुनौती देते हुए उन्हें सचेत करती हैं। इस तरह वे लोक-लाज, मर्यादा के नाम पर होते आ रहे शोषण के तमाम तरीकों को चुनौती दे रही हैं और यह चुनौती मात्र वैयक्तिक स्वतंत्रता की पुकार नहीं रह जाती। यह स्त्री प्रतिपक्ष तैयार करती है। व्यवस्था के प्रति गहरे असंतोष का भाव और विद्रोह का यह स्वर ही इन्हें अन्य समकालीन संत कवियों से अलग करता है।

मीरांबाई की स्त्री-चेतना को उनके संवेदनात्मक विवेक के संदर्भ में भी देखा जाना चाहिए। इस दृष्टि से वैयक्तिकता इनका विशिष्ट गुण है। जहाँ अन्य संत कवि अपने व्यक्तिगत जीवन और सांसारिक संबंधों के विषय में मौन हैं, वहीं मीरांबाई की काव्य -रचना में वह आग्रहपूर्वक आया है। मीरांबाई के काव्य में वैयक्तिक पहचान, सांसारिक संबंध और संदर्भ, सुख-दुख सभी कुछ मुखर रूप से मौजूद है। यह तथ्य इनके गहरे आत्मबोध और स्वतंत्र व्यक्तित्व की ओर संकेत करता है। मीरांबाई भले कुल की मर्यादा छोड़ती हैं परंतु उसे छिपाती नहीं। अपनी पहचान नहीं छिपाती बल्कि उसे लेकर वे बेहद मुखर हैं :

पीहर म्यारो देश मेड़तो छांडी कुल की कांणी।

मीरांबाई सामान्य स्त्री की तरह जीवन के तमाम दुख-तकलीफों को बार-बार याद करती हैं :

सासरियो दुख घणा रे सासू ननद सतावै।

या

साँप पिटारो राणा भैज्यो,

मीरां हाथ दियो जाय।।

स्त्री जीवन के समस्त राग-रंगों का खुलकर वे प्रयोग करती हैं। कोई निषेध या हिचक नहीं। अपने समकालीन पुरुष भक्त कवियों के समकक्ष यह प्रयास बिल्कुल अलग है और ध्यान आकर्षित करने वाला है। यहाँ एक अन्य तथ्य की चर्चा अनिवार्य है। पुरुष भक्तों द्वारा जहाँ भी स्त्री का चित्रण है, वह प्रथमतः तो सांसारिक मोह-माया के जाल के रूप में अभिव्यक्त है। दूसरे जहाँ वह माधुर्य भाव की भक्ति के वशीभूत होकर भी स्त्री को अपने काव्य का विषय बनाता है, वहाँ भी विषय के रूप में उसका व्यवहार स्त्री के साथ पुरुषवादी ही है। विद्यापति से लेकर सूरदास तक। सभी बड़े नाम यहाँ गिने जा सकते हैं। स्त्री जीवन के प्रति संवेदनशीलता की दृष्टि इन कवियों के पास नहीं है और न ही स्त्री-हृदय को समझ सकने की क्षमता इनके पास है। यही नहीं जिन स्त्री कवयित्रियों ने भी प्रयास किए हैं, वे भी परंपरा के वशीभूत होकर स्त्री चित्रण के उसी परंपरागत ढाँचे को अपनाती हैं। मीरांबाई इस परंपरा की अवहेलना कर स्त्री जीवन के जो सघन और विश्वसनीय चित्र अंकित करती हैं, वे समूचे भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है। वे स्त्री-प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण करती हैं। स्त्री के अनुभूत संसार को सजीव बना देती हैं। बिना किसी पर्दे या दुराव-छिपाव के। मीरां के व्यक्तित्व की स्वच्छंदता इस चित्रण को और अधिक मर्मस्पर्शी एवं ग्राह्य बनाती है। इस तरह मीरांबाई का स्त्री व्यक्तित्व उनके कवित्व को विशिष्ट और साहित्य की चरम उपलब्धि बनाता है।

बोध प्रश्न

6. निम्नलिखित पंक्तियों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) ..... के प्रति असंतोष का भाव मीरांबाई को अपने समय के अन्य संत कवियों से अलग करता है।

(ख) मीरांबाई का काव्य स्त्री जीवन के ..... संसार को सजीव बनाता है।

7. निम्न प्रश्नों के उत्तर पाँच-पाँच पंक्तियों में दीजिए।

(क) मीरांबाई के काव्य में स्त्री चेतना के प्रमुख स्वर क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

(ख) मीरांबाई अपने समय के पुरुष संत कवियों से किस प्रकार भिन्न हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

8.6 मीरांबाई की काव्य भाषा

मीरांबाई की रचनाओं की भाषा को लेकर भी पर्याप्त मतभेद रहे हैं। इस मतभेद का मुख्य कारण इन पदों के प्रामाणिक रूप की अनुपलब्धता है। अन्य मध्यकालीन संत कवियों की ही भाँति मीरांबाई के पद भी हमें या तो मौखिक परंपरा से प्राप्त हुए हैं अथवा हस्तलिखित प्रतियों (सामान्यतः गुटकों) से। इन प्रतियों की शुद्धता सदैव संदिग्ध मानी गई है। गेय परंपरा से चले आ रहे इन पदों के जो रूप इन हस्तलिखित प्रतियों में मिलते हैं, उनमें पर्याप्त भाषिक वैविध्य दृष्टिगत होता है। काल के लंबे अंतराल में संगृहित इन पदों पर संकलनकर्ताओं की निश्चित ही छाप पड़ी है। अतः उनमें अनेक प्रकार के परिवर्तन भी हुए हैं। एक दूसरा बड़ा कारण संभवतः स्वयं मीरांबाई का भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भ्रमण और उन स्थानों की बोलियों का उनकी रचनात्मकता पर आए प्रभाव के रूप में भी देखा जा सकता है। इसी मतभेद का परिणाम है कि भिन्न-भिन्न संकलनकर्ता संपादक आदि मीरांबाई के प्रचलित पदों के आधार पर उन्हें अनेक भाषाओं की कवयित्री घोषित कर बैठते हैं। मीरांबाई के कुछ पदों की भाषा पूर्ण रूप से गुजराती है तो कुछ की शुद्ध ब्रजभाषा। कहीं-कहीं पंजाबी का प्रयोग भी दिखाई देता है। शेष पद मुख्य रूप से राजस्थानी में ही पाए जाते हैं, इनमें ब्रजभाषा का भी पुट मिला हुआ है। मीरांबाई के मूल पद, स्पष्ट है कि मुख्य रूप से राजस्थानी में ही रहे होंगे किंतु आज उनमें इन भाषाओं के प्रभाव हम साफ देख सकते हैं। इसी आधार पर परशुराम चतुर्वेदी जब मीरांबाई की पदावली का संपादन करते हैं तो मुख्यतः चार बोलियों में उनके पदों के होने की ओर संकेत करते हैं। ये चार बोलियाँ हैं– राजस्थानी, गुजराती, ब्रजभाषा और पंजाबी। इन बोलियों में मीरांबाई के पदों के उदाहरण भी देखिए :

राजस्थानी

थारी छूँ रमैया मोसूँ नेह निभावो।

थारो कारण सब सुख छोड़या, हमकूँ क्यूँ तरसावौ।।

गुजराती

मुखड़ानी माया लागी रे मोहन प्यारा।

मुखड़ँ में जोयुँ तारू सर्व जग थायुँ खारू।।

पंजाबी

आवदा जांवदा नजर न आवै।

अजब तमाशा इस दा नी।।

ब्रजभाषा

सखी मेरी नींद नसानी हो,

पिय को पंथ निहारत, सिगरी रैन बिहानी हो।

सब सखियन मिलि सीख दई मन एक न मानी हो।।

दरअसल मीरांबाई के पद अपनी संपूर्णता में इन अलग-अलग बोलियों में नहीं रचे गए, अपितु मुख्य रूप से उनके पद ब्रजभाषा तथा राजस्थानी में ही हैं, अन्य भाषाओं का केवल मिश्रण यहाँ दृष्टिगत होता है। इस रूप के साथ कहीं-कहीं अवधी आदि का मिश्रण भी प्राप्त हो जाता है, जैसे :

हमरे शैरे लागिल कैसे छूटे।

वैसे ग्रियर्सन ब्रजभाषा, गुजराती, राजस्थानी और पंजाबी में तात्विक एकता की चर्चा भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी करते हैं। कीर्तन मंडलियों, साधु-संन्यासियों और भजन गायकों ने भी मीरांबाई के पदों की भाषा में परिवर्तन का कार्य बड़े पैमाने पर किया है।

अतः मीरांबाई का व्यापक कवि व्यक्तित्व हो, उनके भक्तिमय भ्रमण का प्रभाव या जन सामान्य के कंठ में शताब्दियों से बसे उनके मधुर गीत, भाषा की विविधता उनके काव्य की व्यापक जन स्वीकृति को दर्शाती है।

8.7 मीरांबाई का काव्य सौंदर्य

मीरांबाई का काव्य एकनिष्ठ भक्त हृदय का प्रेमपूर्ण उद्‌गार है। ये पहले कवि नहीं, पहले भक्त हैं। ये पांडित्य के आधार पर रचना में प्रवृत्त नहीं होतीं, न ही सूर, तुलसी, जायसी की तरह ये काव्य-कर्म के लिए शिक्षित-दीक्षित हैं। इस अर्थ में मीरांबाई कबीर के अधिक निकट हैं। इसीलिए इनके यहाँ परंपरा प्राप्त कला का अवगाहन नहीं है, एक नैसर्गिक प्रतिभा है जो इनके पदों में विशेष नूतन सौंदर्य बोध भरती है। ये पद जीवन की आँच से तपे हुए और अनुभूति के आवेग से जनित हैं। इनकी मर्मभेदकता वैयक्तिपरकता, अनुभूति की गहराई और सरल अभिव्यंजना शैली इसे अन्य भक्त कवियों से पूरी तरह पृथक करती है। मीरांबाई की अनुभूति उनके अभिव्यंजना के तत्वों से ऐसी घुल-मिल कर सामने आती है कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। इसका मुख्य कारण यह है कि शिल्प यहाँ साधन अधिक है। इनके पद भावावेग और वह भी उद्‌दाम भावावेग को व्यक्त करते हैं। प्रेमाभक्ति और उसमें मग्न साधिका के आकुल कंठ की पुकार हैं ये पद। अतः भाव पक्ष ही इनके पदों का साध्य है। इस साध्य की पूर्ति का सहज साधन मात्र बनकर शिल्प पक्ष सामने आता है। यह सहजता

मीरांबाई के काव्य का आकर्षण बन जाती है। मीरांबाई का भक्त रूप उनके कवि रूप पर सदैव भारी रहा है। भाषा हो या शिल्प के अन्य रूप सभी अपनी स्वाभाविकता में बिना किसी प्रदर्शन के भावों के सहज अनुगामी होकर प्रयुक्त हुए हैं। काव्य के मूल्यांकन के परंपरागत मानदंडों से पृथक मीरांबाई अपने काव्य के मूल्यांकन के भिन्न मानक रखती हैं।

इस दृष्टि से स्वच्छंदता की वृत्ति और आडंबरहीनता ये दो गुण इनके काव्य के लिए मुख्य सौंदर्य विधायी तत्व माने जा सकते हैं। कलाविहीनता को ही मीरांबाई की सबसे बड़ी कला कहा जाना चाहिए। मीरां कृष्ण प्रेम में मग्न काव्य के परंपरागत मानदंडों का उपहास-सा करती हैं। शायद प्रेम यदि सामान्य होता तो कलात्मक चमत्कार की आवश्यकता होती, किंतु यहाँ तो प्रेम का अपार सागर है, और सरलतम या स्पष्टतम शब्दों में भी उसकी अभिव्यक्ति अवश्य प्रभावी होती है। उसके लिए किसी अलंकरण या प्रसाधन की आवश्यकता नहीं। मीरांबाई का काव्य अपने लिए यही मार्ग चुनता है– बिल्कुल स्पष्ट और सीधी अभिव्यक्ति :

मेरे तो गिरिधन गोपाल, दूसरो न कोई।

मीरांबाई के पद साहित्यिक परंपराओं से ही मुक्त नहीं हैं, वे ध्वनि, व्यंजना, रीति, गुण, अलंकार, छंद आदि किसी भी परंपरा का निर्वाह नहीं करते। संभव है कुछ पदों में उपमा, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि के संकेत मिलें। उदाहरणस्वरूप :

अनुप्रास

जोगी मत जा, मत जा, मत जा...

या

साजि सिंगार बांध पग घुँघरू, लोकलाज तजि नाची

जैसे रूपक का यह प्रसिद्ध उदाहरण :

अंसुवांजन सींच सींच प्रेम बेल बोई।

अनुप्रास कुछ अधिक संख्या में हैं किंतु उसका कारण गीतिकाव्य का कलेवर है। परंतु, ये भी अनायास ही आए हैं। वे मीरांबाई के लिए सायास कलात्मक प्रयास नहीं हैं। वैसे भी इनकी संख्या नगण्य है। मीरांबाई इनकी योजना में समय क्यों लगातीं। वे तो हृदय की गूढ़तम अभिव्यक्तियों और मर्म वेदनाओं को प्रकट करने के प्रयास में लगी हुई थीं और उसका प्रकटीकरण आडंबरहीनता से ही संभव था। हम जानकारी प्राप्त कर चुके हैं कि मीरांबाई का संस्कार भक्त हृदय का संस्कार था, कवि हृदय का नहीं इसीलिए परंपरागत काव्य मानकों से यह मुक्ति संभव बन पड़ी। यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य है कि प्रतीकों का प्रयोग मीरांबाई परंपरागत स्वरूप में ही करती दीखती हैं। अपने स्वच्छंद काव्य व्यवहार के विपरीत इनके काव्य में प्रतीकों का भरपूर प्रयोग हुआ है और वह भी परंपरागत अर्थ में ही। परंतु इसका कारण सचेत काव्य व्यवहार नहीं है बल्कि साधु संगति है। वैरागियों और साधुओं की लंबी संगत में मीरांबाई स्वाभाविक रूप से उन धार्मिक प्रतीकों का ज्ञान प्राप्त करती हैं जो भक्ति और उसके विभिन्न आयामों से जुड़े हैं। बिना किसी हिचक के वे उनका प्रयोग भी करती हैं। जैसे– जल और मीन का प्रतीक परमात्मा एवं जीवात्मा के लिए प्रसिद्ध है। मीरांबाई इसका सहज प्रयोग करती हैं :

पानी में भी मीन प्यासी, मोह सुन-सुन आवत हांसी।

मीरांबाई के काव्य सौंदर्य का एक महत्वपूर्ण स्तंभ उनके काव्य का गेय स्वरूप है। हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण गीतिकाव्यों में मीरां के पद सम्मिलित हैं। सूरदास या विद्यापति के समान या शायद कहीं उनसे अधिक ही मीरां के पद जन सामान्य की कंठ ध्वनि बने हुए हैं।

सूरदास के पदों में गीतिपरकता के समानांतर कृष्ण-कथा की एक अंतर्वर्ती धारा प्रवाहित होती जान पड़ती है। दूसरी ओर विद्यापति के मुक्तक पद नायिका भेद की परंपरा में बँध जाते हैं। ये दोनों कवि कहीं न कहीं इन माध्यमों को कविता में सामान्य आकर्षण का हथियार बना कर काव्य प्रतिनिधि का मार्ग सरल कर देते हैं। इसके विपरीत मीरांबाई के पद ऐसा कोई आश्रय नहीं ढूँढ़ते। वे सीधे उनके हृदयोद्‌गार हैं। इन पदों की मार्मिकता, मुक्त व्यवहार, संक्षिप्तता और सरसता इनमें विशेष गेयता भरती है। मीरां भक्ति परंपरा में स्थापित राग-रागिनियों से भी परिचित थीं और उनका भी कुशल व्यवहार करती हैं। हाँ, ये अवश्य है कि वहाँ भी शास्त्रीयता का आग्रह नहीं है। यही स्थिति छंद प्रयोगों को लेकर भी है। वे लोक जीवन में प्रसिद्ध छंदों को चुनती हैं परंतु उसके प्रति कोई शास्त्रीय व्यवहार नहीं रखतीं। छंद प्रयोग यहाँ प्रायः त्रुटिपूर्ण ही हैं। मसला यहाँ त्रुटि का नहीं काव्य के प्रभाव का ही अधिक है और मीरांबाई उसमें पूर्णतः सफल है। मीरां के पद सीधे उनके हृदय के उद्‌गार हैं इसलिए अधिक प्रभावित करते हैं। इन पदों में स्पष्टता व सरलता है और उससे भी आगे बढ़कर एक स्वच्छंद वृत्ति है। ये पद युगों से स्थापित काव्य परंपरा से स्वच्छंद हैं। भाषा व भाव प्रत्येक दृष्टि से स्वच्छंदता का रागात्मक आवेग है जो सभी बंधनों को तोड़ता है। पर इस तोड़ने में ही कहीं भी असंयम या संकुचन का भाव नहीं है। मीरांबाई की भक्ति की इसी स्वच्छंदता में जिसमें लोक-लाज की परवाह न थी, समाज का कोई भय न था। अपना मार्ग स्वयं तलाशने की शक्ति थी। इनके काव्य का कलात्मक पक्ष ठीक उसी प्रकार अपने लिए स्वच्छंद सौंदर्य तलाश लेता है।

बोध प्रश्न

8. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सही (✓) अथवा गलत (×) के चिह्न लगाकर दीजिए।

(क) मीरांबाई की काव्य भाषा राजस्थानी, गुजराती और मैथिली है। ( )

(ख) लंबे समय से मौखिक परंपरा में प्रचलित होने के कारण मीरांबाई के पदों में भाषा के अनेक रूप मिलते हैं। ( )

(ग) मीरांबाई का काव्य मुख्यतः गीतिपरक है। ( )

(घ) आडंबरहीनता मीरांबाई के काव्य सौंदर्य का एक प्रमुख गुण है। ( )

(ङ) मीरांबाई के काव्य पर निर्गुण परंपरा का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ( )

9. निम्न प्रश्नों के उत्तर पाँच-पाँच पंक्तियों में दीजिए।

(क) मीरांबाई की रचनाओं में शिल्प केवल साधन मात्र है, कैसे?

.....

.....

.....

.....

.....

(ख) मीरांबाई की भाषा पर कीर्तन मंडलियों का क्या प्रभाव पड़ा?

.....

.....

.....

.....

.....

10. मीरांबाई की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

11. मीरांबाई के काव्य की भाषिक विशेषताएँ बताएँ? (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

12. मीरांबाई का काव्य सौंदर्य स्पष्ट करें? (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

13. ''मीरांबाई की भक्ति अनुभवजन्य है'', इस कथन पर अपना विचार प्रकट करें। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14. मीरांबाई का काव्य पुरुषवादी वर्चस्व को कैसे चुनौती देता है? (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8.8 मीरांबाई की कविता का वाचन और आस्वादन

कविता का वाचन

देखिए– परिशिष्ट

कविता का आस्वादन

- **मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो ने कोई।। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ मीरांबाई की पदावली से ली गई है।

व्याख्या

मीरांबाई अनन्य भक्तिभाव के साथ कृष्ण को अपने सर्वस्व के रूप में घोषित करते हुए कहती हैं कि कृष्ण ही एकमात्र उनके अपने हैं, अन्य सभी जीवन संबंध उनके लिए अभिप्रायहीन हैं। कोई भी दूसरा सगा-संबंधी उनके लिए 'अपना' होने की सीमा में नहीं शामिल हो पाता। वे भक्ति के मार्ग पर सांसारिक संबंधों का त्याग कर चुकी हैं इसलिए माता, पिता और सगे-संबंधियों को छोड़ने की बात करती हैं। सगे-संबंधियों को छोड़ने की ये स्पष्ट घोषणा ईश्वर भक्ति में एकनिष्ठता की सूचना है। मीरांबाई सांसारिक संबंधों को त्याग कर एकमात्र कृष्ण से ही अपना संबंध स्थापित करती हैं। सांसारिकता से विरक्त मीरांबाई साधु संगति को अपनाती हैं और मध्यकालीन सामाजिक नियमन की दृष्टि से ऐसा करके वे कुल की मर्यादा भंग करती हैं। समाज में भक्त रूप से भिन्न स्त्री की अपनी छवि की प्रतिष्ठा को खो देती हैं। स्वयं मीरां द्वारा इसका ऐसा स्पष्ट संकेत, उनके सामाजिक बंधनों के प्रति विरोधी स्वर का परिचायक है। इस क्रम में आगे वे बताती हैं कि वे जगत के व्यवहार और सामाजिकता को कष्टप्रद मानती हैं। उनका हृदय इन कष्टों पर रोता है जबकि संतों की संगति देख वे प्रसन्नता से उसका अंग होना चाहती हैं। कृष्ण की भक्ति में तल्लीन मीरांबाई उन्हें अपना पति या प्रिय मानते हुए उनके विरह से ग्रस्त है और कहती है कि उन्होंने कृष्ण प्रेम की बेल जो कि भक्ति की अमरबेल है उसे विरह के आँसुओं से सींच-सींच कर विकसित किया है।

इसमें भक्ति मार्ग में आए वे संत महत्वपूर्ण हैं जो मुक्ति के मार्ग की शिक्षा उन्हें देते हैं। उन सभी संतों को वे सम्मान देती हैं तथा कृष्ण नाम उनके हृदय में बसता है। यहाँ हृदय और बुद्धि दोनों की चर्चा है। व्यक्तित्व के संतुलन के लिए दोनों में संतुलन आवश्यक है। सिर पर संत और हृदय में कृष्ण का वास यही वह वितान है जो मीरांबाई के व्यक्तित्व को गढ़ता है। उनके इस व्यवहार की चर्चा अब समाज में फैल गई है अर्थात जनसामान्य या इसे सभी जानते हैं। सामंती समाज में उनके इस व्यवहार को लेकर प्रवाद फैल गए हैं। अंततः अकुंठ और अभय की मुद्रा में वे स्वयं को कृष्ण की दासी घोषित करते हुए कहती हैं कि मैं तो कृष्ण की अधीनता में हूँ, उसकी दासी हूँ, अब जो होना हो सो हो।

विशेष

(i) यहाँ मीरांबाई अपने सगुण स्वरूप ईश्वर के लिए निर्गुणियों वाला मार्ग अपनाती दिखाई देती हैं। सगुण निर्गुण का यह अभेद मीरांबाई की भक्ति की विशिष्टता है।

(ii) मीरां का विद्रोही व्यक्तित्व यहाँ मुखर है। साथ ही भक्ति के मार्ग में संगति के महत्व को भी यहाँ बखूबी दिखाया गया है। यह संत परंपरा के पूर्णतः अनुकूल है।

(iii) ब्रजभाषा में रचित यह पद भक्ति परंपरा के प्रसिद्धतम गीतों में से एक है। और युगों से भक्तों के हृदय में बसा हुआ है। जनश्रुति में यह पद कई रूपों में मिलती है, उदाहरणस्वरूप :

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।

जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।।

अथवा

म्हारा री गिरधर गोपाल दूसरां णां कूयां।

दूसरा णा कूयां साधा सकल लोक जूयां।।

इन भिन्न रूपों से केवल इन गीतों की प्रसिद्धि ही नहीं एक अन्य तथ्य भी उभरता है कि संभवतः काल के अंतराल में 'मेरे तो गिरधर गोपाल' गीत की टेक पंक्ति बन गई और अनेक मिलते-जुलते गीतों की सृष्टि इस टेक पंक्ति के साथ होती रही।

- *हे री मैं तो प्रेम दिवानी...*

व्याख्या

ईश्वर के विरह में डूबी मीरांबाई कहती हैं कि हे सखि! मैं तो विरह की पीड़ा से ग्रसित हूँ और ईश्वर के प्रेम की दीवानी हूँ, इस अनोखी पीड़ा को कोई नहीं समझ सकता। ईश्वर के विरह की यह पीड़ा अगम्य है। यह वेदना शूल के सेज के समान पीड़ादाई है, अतः इस पर किस प्रकार सोया जाए। अर्थात मीरांबाई सुखदायी सेज और नींद दोनों से दूर है। यह सेज अवश्य ही ईश्वर से मिलन का प्रतीक है और प्रिय (ईश्वर) मीरांबाई से दूर है। यह पिया की सेज गगन मंडल में बसी है, ऐसे में मिलना किसी विधि से संभव नहीं है। मीरांबाई कहती हैं कि इस विरह की वेदना को या तो वही समझ सकता है जो स्वयं इससे ग्रसित (घायल) हो या वह जिसने प्रेम की लगन लगाई हो, ठीक उसी प्रकार जैसे जवाहरात की कीमत केवल वही लगा सकता है जो स्वयं जौहरी हो अथवा जिसके पास वह जवाहरात हो। अतः मैं प्रिय की वेदना में घायल होकर वन-वन (विभिन्न स्थानों पर) भटक रही हूँ, इस रोग का उपचार जानने वाला वैद्य मुझे अभी तक नहीं मिला। हे साँवरिया कृष्ण मेरी पीड़ा तब ही मिटेगी जब

तुम मेरा उपचार करोगे। कृष्ण से मिलन ही इस विरह रूपी पीड़ा का उपचार है और कृष्ण स्वयं ही विरही मीरां के वैद्य।

विशेष

सूली ऊपर सेज, गगन मंडल पर सेज आदि निर्गुण भक्ति के प्रतीक शब्द हैं।

- *साँप पिटारो राणा भेज्यो...*

व्याख्या

कृष्ण भक्ति में मग्न मीरांबाई के समक्ष परिवार और समाज की ओर से अनेक प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न की गईं। विशेष रूप से पति राणा भोजराज की मृत्यु के बाद राणा विक्रमाजीत सिंह द्वारा मीरांबाई के उत्पीड़न के अनेक किस्से लोक में सुने जाते हैं। इस पद में उन्हीं की ओर संकेत करती हुई मीरांबाई कहती हैं कि राणा ने साँप की पिटारी उनके पास भेजी जिसे ईश्वर पूजा के लिए स्नान-ध्यान कर जब मीरां ने हाथ लगाया तो वह सालिग्राम की मूर्ति बन गई। जब राणा ने जहर का प्याला भेजा तो ईश्वर ने उसे मीरांबाई के लिए अमृत बना दिया और कृष्ण भक्ति में लीन मीरां अमर हो गई। काँटों से भरी सेज पर जब मीरां को सुलाया गया तो वह उनके लिए फूल बन गई। ध्यातव्य है कि उपरोक्त तथ्यों को प्रतीक के रूप में भी समझा जा सकता है। 'जहर पीना' या 'काँटों की सेज' मुहावरे के रूप में आज भी प्रचलित हैं। अतः इसका अभिप्राय शब्दशः न जान कर मीरांबाई के लिए भक्ति के मार्ग में डाली गई बाधाओं के रूप में भी देखा जाना चाहिए। आगे मीरांबाई इस पद में कहती हैं कि उनके प्रभु अर्थात कृष्ण सदैव उनके सहायक हैं और उनके सभी कष्टों को हरते हैं। इन

सभी बाधाओं से परे वे भक्ति के मार्ग में मस्त होकर डोलते हुए अपने प्रभु गिरधर नागर पर न्योछावर होती हैं।

- *मैं अपने सैयाँ संग साँची।...*

व्याख्या

मीरां कहती हैं कि मैं अपने प्रियतम गिरधर नागर के साथ एकाकार हो गई हूँ। अब मुझे किसी तरह की लज्जा नहीं, मैं तो सबके समक्ष नाचती हूँ। अर्थात भक्ति में लीन मीरांबाई के लिए कृष्ण का प्रेम कोई दुराव-छिपाव की बात नहीं है। मीरांबाई आगे कहती हैं कि हरि के वियोग में मुझे दिन में भूख और चैन नहीं और न ही रातों को नींद ही है। भक्ति रूपी गुप्त ज्ञान की तलवार मेरे शरीर के आर-पार हो गई है। अर्थात् ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करने के बाद भक्ति में लीन मीरांबाई के लिए सांसारिक सुख-चैन व्यर्थ और कष्टप्रद हैं। मीरांबाई कहती हैं कि उन्हें कृष्ण भक्ति से दूर करने के लिए उन्हें मनाते हुए अनेक कुटुंब और परिवार जन उन्हें घेरकर बैठे हैं जैसे मधुमास हो किंतु मेरा तो संसार से जो संबंध और संपर्क था वह पूरी तरह समाप्त हो गया है और अब मेरे लिए केवल मेरे गिरधर नागर कृष्ण ही सर्वस्व हैं।

- *होरी पिया बिन लागे खारी...*

व्याख्या

कृष्ण भक्ति के प्रेमस्वरूप को मानने वाली मीरांबाई कृष्ण में अपने प्रियतम की छवि देखती हैं और सांसारिक रूपों में उनसे अपने संबंध की कल्पना के गीत गाती हैं। प्रस्तुत पद इसी

प्रकार का एक पद है जिसमें होली का संदर्भ लिया गया है। मीरांबाई कहती हैं कि ऐ मेरी प्यारी सखि! मेरे दिल की सुनो, पिया (कृष्ण) के बिना यह होली का त्यौहार मुझे खारा अर्थात अप्रिय लगता है। यही नहीं, मुझे तो उनके बिना यह गाँव, यह देश सभी सूने लगते हैं। घर की अटारी और मेरी सेज भी उनके बिना सूने हैं। मन में दुख लिए मैं विरहिणी वन-वन भटक रही हूँ क्योंकि मुझे प्यारी मानने वाले मेरे प्रियतम ने मुझे अकेला छोड़ दिया है। प्रियतम के दुख और विरह की मार से मैं काली पड़ गई हूँ। मेरे प्रिय जिस दूर देश में बसे हैं वहाँ संदेश भेजने के मैंने कई प्रयत्न किए, पर विफल रही। मुझे इस कारण अनिष्ट का अंदेशा हो रहा है। प्रिय से मिलन के दिन के इंतजार में दिन गिनते-गिनते मेरी उँगलियों की रेखाएँ तक घिस गई हैं किंतु कृष्ण अभी तक नहीं आए। देखो सखि! बसंत ऋतु का आगमन हो चुका है, और चारों ओर झाँझ, मृदंग, मुरली, इकतारा आदि वाद्ययंत्र बज रहे हैं। यह बसंत के आगमन में बजने वाले मधुर यंत्रों का असर मुझ पर तो विपरीत ही है। मेरे तो तन और मन दोनों झुलस रहे हैं क्योंकि मेरे प्रिय अभी तक घर नहीं आए। मेरे जलकर राख हो जाने की, मेरे कष्टों की श्याम को तो कोई सुध ही नहीं। इतना होने के बाद तो कम-से-कम मुझ पर दया करो प्रभु। और मेरी बात जरा ध्यान देकर सुनो। मैं एक नहीं अनेक जन्मों से तुम्हारे लिए प्रतीक्षारत हूँ, मैं कुँवारी तुम्हारे दरसन व मिलन के लिए प्रतीक्षा कर रही हूँ, मेरा सारा ध्यान तुम्हारे दर्शन पर ही लगा है। हे माधव! मेरे प्रभु मुझे दर्शन सुख दो और मुझसे मिलो। यह मीरांबाई की अपने प्रियतम कृष्ण से अनन्य विनती है।

- *मेरे मन राम नाम बसी।...*

व्याख्या

मीरांबाई कहती हैं कि मेरा मन राम नाम के रंग में रँग गया है। ध्यातव्य है कि यहाँ राम का नाम ईश्वर के अर्थ में ही है और अन्य भक्तों-कवियों में भी राम या कृष्ण के नाम एक-दूसरे से स्थानांतरित किए गए हैं। भक्तों की अनन्यता में नाम महत्वपूर्ण रह भी नहीं जाते, ईश्वर की भक्ति का गहरा रंग ही केवल महत्व का है। मीरांबाई कहती हैं कि हे श्याम सुंदर तुम्हारे कारण पूरा संसार मुझ पर हँस रहा है। कुछ कहते हैं कि मीरां बावरी हो गई है तो कुछ कहते हैं कि मीरां ने अपने कुल का नाश कर दिया है। दरअसल, मध्यकालीन समाज में स्त्री का पारिवारिक बंधनों को त्याग भक्ति में लीन होना बेहद अस्वीकार्य था। आगे मीरांबाई कहती हैं कि मुझे तुम्हारी भक्ति में डूबा देख कर कोई कहता है कि मीरां का हरि से ऐसा संबंध हो गया है जैसे दीपक का अग्नि से। भक्ति तो उस तलवार की धार के समान है जो यम के फंदे को काट डालती है। हे प्रभु! मैं अब हरि शब्द रूपी सरोवर में धँस गई हूँ।

- *आओ सहेलियाँ रली करो हे...*

व्याख्या

आओ सखियो! मिलकर पराए घर का खेल खेलें, क्योंकि सांसारिक पति के घर जाना एक झूठा खेल है। अतः प्रभु के घर जाने का खेल हम खेलें। सांसारिक ससुराल जाने के खेल में दीखने वाले मोती-माणिक और उनकी जगमगाहट पूर्णतः झूठे और क्षणिक हैं। सभी सांसारिक आभूषण भी व्यर्थ हैं, यदि कुछ सत्य है तो केवल वह माला है जो कृष्ण के नाम स्मरण के लिए धारण की है। सभी राजसी वस्त्र और दक्षिण के रेशमी वस्त्र भी झूठे और व्यर्थ हैं। यदि कुछ सत्य है तो वह है प्रिय कृष्ण के नाम की गूदड़ी, जिसे पहनकर शरीर निर्मल हो जाता है। सभी राजसी छप्पन भोग पकवान भी व्यर्थ हैं। इन्हें तो जल में बहा देना

चाहिए क्योंकि इन सभी में विषय-विकार हैं। इनकी अपेक्षा प्रिय के नाम का साग (सादी सब्जी) और नमक ही प्यारे हैं। मीरांबाई यहाँ सांसारिक आकर्षण को त्याज्य मानकर भक्ति के लिए सादे जीवन को अपनाने की बात कर रही हैं। वे कहती हैं कि पराए के जीवन के सुखों या उपजाऊ भूमि को देखकर मन में खीझ क्यों लाते हो, अपनी क्षारयुक्त भूमि ही भली है, भले उसमें कम ही फसल क्यों न होती हो। यह संतोष के सुख और सांसारिक मोह से मुक्ति का संदेश है। मीरांबाई आगे कहती हैं कि पराया पुरुष भले ही कितना ही धनी क्यों न हो उससे हमें कोई लाभ नहीं, किसी पराए छैल-छबीले संग हमारा किसी प्रकार निबाह नहीं हो सकता। भले ही अपना पति निर्धन या कुष्ठ रोगी ही क्यों न हो। अपने पति के साथ ही गमन को सारा संसार सराहता है। यहाँ मीरां भक्ति के अलग-अलग मतों को नकारती हैं और कृष्ण भक्ति के अपने तरीके को ही श्रेष्ठ बताती हैं। उनके अनुसार अन्य मत-मतांतर भले ही कितने भी श्रेष्ठ दिखें पर उनके लिए तो उनकी कृष्ण भक्ति ही एक मात्र मार्ग है। यह सूरदास की गोपियों द्वारा उद्धव को दिए जाने वाले जवाब जैसा ही है। यहाँ मीरांबाई कहती हैं कि हे सखियों! जो कृष्ण अविनाशी हैं, वे ही मेरे सच्चे मीत हैं। उनसे मेरी प्रीत सच्ची है। मुझे प्रभु कृष्ण का इस तरह मिलना ही भक्ति की सच्ची परंपरा (रीत) है।

- **होरी पिया बिन लागे खारी, सुनि री सखी मेरी प्यारी।। ...**

व्याख्या

मीरां अपनी सखियों को संबोधित करते हुए कहती हैं कि हे सखी, प्रियतम के बिना मुझे होली फीकी अर्थात आनंदहीन लग रही है। प्रियतम के बिना गाँव, देश, बिस्तर, महल सब मेरे लिए सूने हैं। अपने पिया के विरह में मैं दुखियारी बनी हुई हूँ। न जाने वे कहाँ है?

वे देश में हैं अथवा परदेश में, उन तक मेरा संदेश नहीं पहुँच पा रहा है, इससे मेरी चिंता बढ़ती जा रही है। उनके आने के इंतजार में दिन गिनते-गिनते ऊँगलियों की रेखाएँ घिस गई हैं, पर प्रियतम अब तक नहीं आए। होली के उत्सव में झांझ, मृंदग, मुरली, इकतारा बजाए जा रहे हैं, बसंत में प्रिय के घर में न होने के कारण मेरे शरीर का ताप बढ़ गया है। अर्थात प्रिय की चिंता में मैं बीमार हो गई हूँ। लेकिन श्याम (प्रियतम) इस पर विचार नहीं करते। मीरां कृष्ण से विनती करती हैं कि मैं आपके दर्शन की प्यासी हूँ, आपको पति रूप में पाने के लिए जन्म-जमांतरों से कुँवारी हूँ, मुझ पर कृपा कीजिए, मेरी बातों को मन से सुनिए, मुझसे आकर मिलिए। मुझे दर्शन दीजिए।

- **श्री गिरधर आगे नाचूँगी। ...**

व्याख्या

कृष्ण के प्रति अपने प्रेम तथा सामंती वर्जनाओं को अस्वीकार करते हुए मीरां कहती है कि मैं कृष्ण के सामने नाचूँगी; कृष्ण ही मेरे पति हैं। मैं नाच-नाचकर अपने कृष्ण को रिझा लूँगी तथा कृष्ण को प्रेम करने वाले लोगों की परीक्षा लूँगी। आशय यह है कि अपने को कृष्ण का प्रेमी बताने वाले लोग कृष्ण को प्रेम करने वाली मीरां के साथ हैं अथवा सामंती वर्जनाओं के साथ हैं। मीरां कहती हैं कि प्रेम रूपी घूँधरू बाँधकर प्रेम के वस्त्र ही धारण करूँगी। (सुरत की कछनी = योगियों या भक्तों के वस्त्र) वे कहती हैं कि सामाजिक वर्जना तथा वंश की (झूठी) मर्यादा का ख्याल न कर पलंग चढ़ कृष्ण के रंग में रँग जाऊँगी।

- **मैंने राम रतन धन पायौ। ...**

व्याख्या

मीरां भौतिक ऐश्वर्य, धन दौलत की निस्सारता तथा ईश्वर रूपी धन की महिमा का बखान करते हुए कहती हैं कि सत्य के मार्ग पर चलने वाले मेरे गुरु ने मुझे ऐसी वस्तु दी है जिसका कोई मूल्य नहीं है अर्थात सांसारिक धन-दौलत से उसे पाया नहीं जा सकता है। यह वस्तु प्रभु के नाम रूपी रत्न है जिसे मैंने सँजोकर रख लिया है। जन्म भर लोग पूँजी इकट्ठा करते हैं पर संसार में सब खो जाता है। प्रभु का नाम ऐसी संपत्ति है जो न खत्म होता है, न इसे चोर चुरा सकता है, इसमें आस्था रखने पर यह बढ़ता ही जाता है। मैं सत्य के नाव पर चढ़कर संसार रूपी सागर को पार कर जाऊँगी क्योंकि इस नाव के खेवनहार सत्य के मार्ग पर चलने वाले मेरे गुरु हैं। मीरां कहती है कि मेरे भगवान श्रीकृष्ण हैं। मैं हर्ष के साथ उनके यश का गान करती हूँ।

- **जो तुम तोड़ो, पिया मैं नहीं तोडूँ।.....**

व्याख्या

मीरां कृष्ण को अपना सर्वस्व मानती हैं। कृष्ण को ही वे पति मानती हैं। इस कविता में वे विभिन्न संदर्भों से यह कहती हैं कि कृष्ण ही उनके जीवन के आधार हैं, वे उन्हें कैसे छोड़ सकती हैं! वे कृष्ण के आगे अपना प्रेम तथा अपनी विकल्पहीनता निवेदित करते हुए कहती हैं कि हे पिया तुम अगर मुझसे संबंध तोड़ भी लो तो भी मैं नहीं तोडूँगी। हे कृष्ण तुमसे अपना प्रेम खत्म कर दूँ तो फिर मैं किसके साथ अपना प्रेम संबंध बनाऊँ। मेरा तुम्हारा संबंध

अटूट है। तुम मेरे लिए वैसे ही अनिवार्य हो जैसे पक्षी के लिए पेड़ तथा मछली के लिए तालाब। तुम मेरे लिए पर्वत हो तो मैं उस पर उगी हुई घास हूँ। हमारा संबंध भी उसी तरह अटूट है। मेरे अंदर तुम्हें पाने के लिए वैसी ही प्यास है जैसे चाँद के लिए चकोर पक्षी को होता है। मैं मोती के समान हूँ, तुम धागे के समान। तुम्हारी सहायता से मैं माला के समान सुंदर बन जाऊँगी। मेरा मूल्य बढ़ जाएगा। तुम्हारे बिना मैं बिखर जाऊँगी। आधारहीन हो जाऊँगी।

8.9 सारांश

- हिंदी के भक्तिकाव्य में मीरांबाई का विशिष्ट स्थान है। वे मेवाड़ राज परिवार की बहू थीं तथा प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवयित्री के रूप में जानी गईं।
- मीरांबाई की रचनाओं का प्रामाणिक दस्तावेज नहीं मिलता। उनकी रचनाएँ विभिन्न रूपों में प्राप्त हुई जिन्हें विद्वानों ने संकलित-संपादित कर प्रस्तुत किया।
- मीरांबाई के हृदय में बचपन से ही कृष्ण के प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाने की किंवदंतियाँ मिलती हैं। आगे चलकर पति की तथा अन्य परिजनों की मृत्यु के बाद वे पूर्णतः कृष्णभक्ति में डूब गईं।
- मीरांबाई कृष्णभक्ति के किसी संप्रदाय से संबंधित नहीं थीं। उन्होंने कृष्ण की आराधना दांपत्य भाव से की है।
- उनके काव्य में स्त्री-चेतना की भी प्रखर अभिव्यक्ति हुई है।
- मीरांबाई की भाषा मुख्य रूप से राजस्थानी है। जिस पर गुजराती, ब्रजभाषा तथा पंजाबी का प्रभाव भी दिखाई देता है।

8.10 उपयोगी पुस्तकें

- *संत मीरांबाई और उनकी पदावली* – बलदेव वंशी; परमेश्वरी प्रकाशन
- *संत कवि मीरांबाई* – विवेक भसीन/बलदेव वंशी; इंद्रप्रस्थ इंटरनेशनल
- *मीरां का जीवन और समाज* – माधव हाड़ा; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- *मीरां का काव्य* – विश्वनाथ त्रिपाठी; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- *मीरां और मीरां* –महादेवी वर्मा; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- *मीरांबाई* – श्री कृष्णलाल; हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) ✓

   (ख) ✓

   (ग) ×

   (घ) ✓

   (ङ) ×

2. (क) देखिए– भाग 8.2

   (ख) देखिए– भाग 8.3

3. (क) दांपत्य

   (ख) अनुभूतिपरक

(ग) लीला

(घ) विरह

4. देखिए– भाग 8.4

5. देखिए– भाग 8.4

6. (क) व्यवस्था

(ख) अनुभूत संसार

7. (क) देखिए– भाग 8.5

(ख) देखिए– भाग 8.5

8. (क) ×

(ख) ✓

(ग) ✓

(घ) ✓

(ङ) ×

9. (क) देखिए– भाग 8.6

(ख) देखिए– भाग 8.7

10. देखिए– भाग 8.3

11. देखिए– भाग 8.6

12. देखिए– भाग 8.7

13. देखिए– भाग 8.4

14. देखिए– भाग 8.5

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई : 9 बिहारी का काव्य

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्‌देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 बिहारी का जीवन परिचय

9.2.1 युगीन परिवेश, कवि व्यक्तित्व और रचना

9.2.2 सतसई परंपरा और 'बिहारी सतसई'

9.3 बिहारी की कविता में शृंगार, सौंदर्य और प्रेम

9.3.1 संयोग और वियोग शृंगार

9.3.2 सौंदर्य और प्रेम-चित्रण

9.4 बिहारी की कविता में भक्ति, नीति और लोक

9.5 बिहारी की कविता की काव्य भाषा और काव्य रूप

9.6 बिहारी की कविता का वाचन और आस्वादन

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 उपयोगी पुस्तकें

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में रीतिसिद्ध कवि बिहारी के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में जानकारी दी गई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- बिहारी के युगीन परिवेश, उनका जीवन परिचय और कृतित्व का परिचय दे सकेंगे;
- सतसई और मुक्तक काव्य परंपरा में 'बिहारी सतसई' के महत्व का प्रतिपादन कर सकेंगे;
- बिहारी के काव्य में व्यक्त प्रेम, सौंदर्य और श्रृंगार के स्वरूप को स्पष्ट कर पाएँगे;
- बिहारी के काव्य में लोक जीवन के विविध रंगो का विवेचन करते हुए नीतिकाव्य और भक्तिकाव्य के तत्व तलाश सकेंगे; तथा
- बिहारी की कविता के काव्यशिल्प– भाषा, अलंकार और छंद से परिचित हो सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं। रीतिकाल के आलोचकों और इतिहासकारों ने कवि बिहारी अथवा बिहारीलाल को 'रीतिसिद्ध' काव्यधारा का कवि माना है। रीतिसिद्ध अर्थात रीतिकविता की वह धारा जिसका कवि रीति प्रणाली तथा सिद्धांत का अनुगमन न कर उसे आत्मसात कर लेता है दूसरी ओर वह रीति से मुक्त होने का प्रयास भी करता है। यों वह रीति प्रणाली से न पूरी तरह आबद्ध होता है न ही मुक्त। कह सकते हैं कि बिहारी रीतिशास्त्र की बँधी लीक और स्वच्छंद रीतिकाव्य के बीच के कवि हैं। बिहारी के काव्य में युगीन परिवेश का दरबारीपन है, भक्ति की तासीर है और सौंदर्य और प्रेम की गहराई भी है। श्रृंगार के संयोग और वियोग की संवेदना तो है ही। नायिका भेद, अलंकार, सौंदर्य, प्रेम भक्ति, नीति

की कविता लिखते हुए बिहारी की कविता रीतिकालीन बँधी-बँधाई रीति से अलग मौलिकता के रंग में रँगी है। छोटे से छंद दोहे में बिहारी कमाल की कला का परिचय देते हैं। कविता के बाह्य चमत्कार, श्रृंगार के साथ प्रेम और सौंदर्य की गहराई जैसी बिहारी में है वैसी उस युग के दूसरे कवियों में न थी। नागर बोध और सामंती-विलासी चेतना से भरे नायक-नायिका के हाव-भाव से बिहारी युगीन सामंती संस्कृति का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं। श्रृंगार के ऐंद्रिक चित्रण में पतनशील सामंती प्रवृत्तित का दर्शन होता है। भक्तिकाल के नायक-नायिका कृष्ण और राधा बिहारी के यहाँ ईश्वरत्व छोड़कर, सदाचार और नैतिकता से मुक्त होकर प्रेम करते हैं। जीवन के बाह्य श्रृंगार और सौंदर्य के साथ बिहारी की कविता में कम ही सही प्रेम की गहराई भी है। बिहारी की बहुज्ञता ही उन्हें रीतिकाल का विरल कवि बनाती है। उनकी कविता में जीवन की विविध छवियाँ हैं। दोहा जैसे छोटे छंद में शब्दालंकार और अर्थालंकार की छटा देखने लायक है। शब्द प्रयोग और चित्रात्मकता तो अद्‌भुत है कविवर बिहारी की।

9.2 बिहारी का जीवन परिचय

रीतिकालीन मुक्तक परंपरा के कवि बिहारी का जन्म 1595 ई. को वसुआ गोविंदपुर गाँव, ग्वालियर में हुआ। इनके पिता का नाम केशवराय था। बचपन बुंदेलखंड में बीता और विवाह मथुरा में हुआ। खुद बिहारी ने लिखा भी है :

जनम ग्वालियर जानिए, खंड बुंदेले बाल।

तरूनाई आई सुखद, मथुरा बीस ससुराल।।

बिहारी जी के बचपन में पिता केशवराय इन्हें ग्वालियर से ओरछा ले गए। ओरछा में ही इन्होंने प्रसिद्ध रीतिकवि केशवदास से काव्य शिक्षा प्राप्त की। वहीं पर संस्कृत और प्राकृत भाषा के प्रमुख ग्रंथों का अध्ययन किया। बिहारी का अब्दुर्रहीम खानखाना से भी अच्छा संपर्क था। मुगल बादशाह शाहजहाँ की कृपा बिहारी को प्राप्त हुई तो जोधपुर, बूँदी आदि रियासतों से भी इन्हे प्रशंसा और वृत्ति मिली। जयपुर के राजा जयसिंह के दरबारी कवि होने का गौरव बिहारी को प्राप्त हुआ। इस दरबार में इनको धन और यश दोनों मिला। जयपुर के राजकुमार रामसिंह को विद्यारंभ भी इन्होंने ही कराया। नरहरिदास और पं. जगन्नाथ के संपर्क से कवि बिहारी जी को अपने काव्य बोध को परिपक्व करने में सहयोग मिला। जीवन का अंतिम दौर निराशा से भरा रहा। 1664 ई. में मथुरा में इनका निधन हुआ।

9.2.1 युगीन परिवेश, कवि व्यक्तित्व और रचना

किसी भी रचनाकार का रचनात्मक व्यक्तित्व और उसकी रचना पर युगीन परिवेश का गहरा असर होता है। युग के सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक और आर्थिक परिवेश से कवि व्यक्तित्व और दृष्टि का निर्माण होता है। बिहारी का समय मुगल सम्राट अकबर के उत्तर-समय से औरंगजेब के आरंभिक दौर तक था। इस तरह जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के शासन सत्ता की रीति-नीति को बिहारी ने देखा। शाहजहाँ का काल तो स्थापत्य, चित्र और कला की दृष्टि से वैभव का काल था। उच्च वर्ग में भोग-विलास की अधिकता थी। निम्न वर्ग की जनता और उच्च वर्ग में बड़ा फर्क था। कलाकारों और कवियों को उच्च वर्ग में आश्रय मिला हुआ था। राजा, नवाब, मनसबदारों के दरबार में होने से कलाकारों और कवियों का स्वतंत्र व्यक्तित्व कम ही उभर पाया। दरबारों में रत्नों, आभूषणों और आमोद-

प्रमोद का बाहुल्य था। अवध, दिल्ली, बुंदेलखंड, राजस्थान के राजाओं, नवाबों के विलासिता के किस्सों का प्रमाण उस युग के कवियों की रचनाओं में साफ देखा जा सकता है। रीतिकाल के इस दौर में अधिकांश कवि सामंती वैभव की चमक-दमक की प्रशंसा करते हैं लेकिन बिहारी जैसे कुछ विरले कवि युगीन यथार्थ का चित्रण करते, उससे टकराते और आश्रयदाता को झकझोरते हुए अपने कवि व्यक्तित्व का विकास करते हैं। अपने आश्रयदाता जयपुर नरेश राजा जयसिंह द्वारा प्रजा विमुख होकर नवविवाहिता पत्नी के साथ अधिक आसक्त होने पर उन्हें चेताते हुए यह दोहा लिखना उस दौर में एक बड़े कवि के कवि व्यक्तित्व का साहस ही कहा जा सकता है :

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल।

अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगें कौन हवाल।।

मुगल राजाओं के संकेत पर मुगल विरोधियों का राजा जयसिंह द्वारा किए गए निर्मम व्यवहार से दुखी होकर कविवर बिहारी ने अपने आश्रयदाता की इस नीति का प्रतिवाद किया। यह बिहारी के कवि व्यक्तित्व का साहस ही था :

स्वारथु, सुकृतु न श्रम बृथा; देखि, बिहंग, बिचारि।

बाक, पराऐं पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि।।

युगीन सामंती विलास, आमोद-प्रमोद, कबूतर, शतरंज, चौसा आदि खेल और विलासिता में डूबे उस सामंती युग पर कटाक्ष करते हुए बिहारी ने लिखा है :

ऊँचैं चितै सराहियतु, गिरह कबूतरू लेतु।

झलकति दृग मुलकित बदनु, तनु पुलकित किहिं हेतु।।

भक्तिकालीन आध्यात्मिकता की जगह रीतिकालीन परिवेश में भक्ति का स्वरूप भी बदल गया। बिहारी के यहाँ राधा-कृष्ण प्रेम और सौंदर्य की अभिव्यक्ति सांसारिकता और भौतिकता के अधिक निकट है। श्रृंगार में भक्ति और भक्ति में श्रृंगार रीति काल की कविता की विशेषता है।

कवि बिहारी का व्यक्तित्व सामंती परिवेश में निर्मित हुआ जिसमें नागर कला का आधिक्य था, लेकिन बिहारी अपने युग के अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह उस सामंती वैभव के प्रशंसक नहीं, आलोचक थे। जीवन के गहरे अनुभव और नागर के साथ लोक की गहरी समझ के कारण ही बिहारी अपने सामंती समाज और राजनीतिक संकीर्णता पर कठोर व्यंग्य और कटाक्ष कर पाते हैं।

बिहारी की रचना को 'बिहारी सतसई' नाम से जाना जाता है। इस रचना में 713 दोहे और सोरठे संगृहीत हैं। यह मुक्तक परंपरा की रचना है। 'बिहारी सतसई' के दोहों के बारे यह दोहा प्रचलित है जो सतसई की महत्ता को बताता है :

सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।

देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।।

बिहारी के दोहों की गूढ़ता-गंभीरता को ध्यान में रखकर इनकी 'सतसई' को 'गागर में सागर' कहा गया है। 'बिहारी सतसई' में नायक-नायिका भेद और अलंकार को सिद्धांत-उदाहरण के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, लेकिन इनकी सुंदर छटा इसमें व्याप्त है। 'बिहारी सतसई' में श्रृंगार, सौंदर्य, प्रेम, भक्ति, नीति के साथ शास्त्र की विविध छवियाँ मौजूद हैं। भक्तिकाल में

'रामचरितमानस' की तरह रीतिकाल में 'बिहारी सतसई' को कवियों, आलोचकों और साहित्येतिहासकारों ने खूब सराहा है। इन रचनाओं पर कई टीकाएँ भी लिखीं गई हैं।

'बिहारी सतसई' की पहली टीका 1662 ई. में कृष्णलाल जी ने लिखा। अन्य प्रमुख टीकाओं में 1717 ई. में सुरति मिश्र ने 'अमर चंद्रिका', 1777 ई. में हरिचरणदास ने 'हरिप्रकाश', 1811 ई. में लल्लूलाल जी ने 'लाल चंद्रिका' नाम से 'बिहारी सतसई' की टीका लिखी। हिंदी गद्य के विकास के साथ 'बिहारी सतसई' पर कई श्रेष्ठ भाष्य और टीका का लेखन हुआ। लाला भगवानदीन ने 'बिहारी बोधिनी', पं. जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने 'बिहारी रत्नाकर' और पद्मसिंह शर्मा ने 'संजीवनी भाष्य' के नाम से 'बिहारी सतसई' की टीका लिखी। अन्य भारतीय भाषाओं में भी 'बिहारी सतसई' का भाष्य लिखा गया।

9.2.2 सतसई परंपरा और 'बिहारी सतसई'

'सतसई' शब्द संस्कृत के 'सप्तशती' शब्द का अपभ्रंश है। साहित्य में मार्कंडेय पुराण में दर्ज 'दुर्गासप्तशती' सप्तशती श्रृंखला की आरंभिक रचना है किंतु यह रचना धार्मिक है। हिंदी की सतसई परंपरा ने जिन रचनाओं से प्रभाव ग्रहण किया उसमें प्रथम कृति हाल कृत 'गाथा सप्तशती' है। 700 गाथाओं की यह रचना प्राकृत भाषा में है। इस रचना में प्रेम और श्रृंगार का मनोहारी चित्रण है। संस्कृत के सतसई ग्रंथों में अनेक ग्रंथ शतक ग्रंथ हैं जो सतसई परंपरा में ही गिने जाते है। सतसई साहित्य में 'गाथा सप्तशती' के बाद भर्तृहरि का 'श्रृंगार शतक', 'वैराग्य शतक' और 'नीति शतक' का नाम शुमार किया जाता है।

इन कृतियों में श्रृंगार के ऐहिक वर्णन के साथ नीति कथन का आकर्षक वर्णन किया गया है। इसी परंपरा में कवि अमरूक के 'अमरूक शतक' का नाम लिया जाता है। अमरूक शतक

में शृंगार का लालित्यपूर्ण चित्रण है। हिंदी की सतसई परंपरा पर 'अमरूक शतक' का सर्वाधिक प्रभाव है। हिंदी में सतसई परंपरा को दो श्रेणियों में बाँटा गया है। एक श्रेणी 'सूक्ति सतसई' की है जिसमें लोक और नीति की अधिकता है। इसी श्रेणी की रचनाओं मे 'तुलसी सतसई', 'रहीम सतसई' और 'वृंद सतसई' शामिल हैं। दूसरी श्रेणी की सतसई परंपरा को 'शृंगार सतसई' कहा गया। इस परंपरा में 'बिहारी सतसई' और 'मतिराम सतसई' जैसी रचनाएँ हैं।

हिंदी की सतसई की परंपरा में 'बिहारी सतसई' सर्वोत्कृष्ट रचना है। 'बिहारी सतसई' में शृंगार, प्रेम, नीति, भक्ति, ज्योतिष और सौंदर्य की सुंदर-प्रौढ़ अभिव्यक्ति है। भाषा की समाहार शक्ति की यह अद्‌भुत कृति है। दोहा जैसे लघु छंद में बिहारी ने लोक और शास्त्र, प्रेम और सौंदर्य, भक्ति और नीति का विरल संयोग किया है। भाव सघनता और वचन वक्रता का सुंदर काव्य है– 'बिहारी सतसई'। नायक-नायिका का हाव-भाव, प्रेम, सौंदर्य और शृंगार को भाषा की चित्रात्मकता में जैसा 'बिहारी सतसई' में पेश किया गया वैसा उत्तर मध्यकाल के अन्य कवियों में दुर्लभ है। निम्नलिखित दोहे में देख लें जिसमें नायक-नायिका के द्वारा नेत्रों की भाषा का सुंदर प्रयोग है।

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे भौन मैं करत हैं, नैननु हीं सब बात।।

'बिहारी सतसई' मुक्तक परंपरा की भी सर्वोत्कृष्ट कृति है। 'बिहारी सतसई' अपनी समाहार शक्ति के कारण दोहे जैसे छोटे छंद में जीवन की, संवेदना की, प्रेम की, भक्ति की, शृंगार की, अलंकार की, रस की अद्‌भुत छटाएँ धारण किए हुई है। आधुनिक काल में सतसई

परंपरा में जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' कृत 'उद्धव शतक' और वियोगी हरि का 'वीर सतसई' शामिल है, लेकिन इन रचनाओं में बिहारी सतसई जैसी विविधता और गहराई नहीं है।

9.3 बिहारी की कविता में शृंगार, सौंदर्य और प्रेम

शृंगार रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति है। 'बिहारी सतसई' को शृंगार का श्रेष्ठ काव्य माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी बिहारी की कविता की प्रधान प्रवृत्ति शृंगारी मानी है किंतु उनकी कविता में वे प्रेम-दृष्टि का अभाव देखते हैं। उन्हीं के शब्दों में, ''कविता उनकी शृंगारी है, पर प्रेम की उच्च भूमि पर नहीं पहुँचती, नीचे रह जाती है।'' पर 'बिहारी सतसई' सूक्ष्म शृंगारिक काव्य नहीं है उसमें सौंदर्य और प्रेम की विविध छवियाँ हैं। वैसे भी शृंगार का प्रेम और सौंदर्य से गहरा रिश्ता है।

9.3.1 संयोग और वियोग शृंगार

शृंगार रस का स्थायी भाव 'रति' है। संयोग और वियोग शृंगार इसके दो भेद हैं। बिहारी का शृंगार वर्णन रीतिकाल में विरल है। संयोग शृंगार में बिहारी ने शृंगार की शास्त्रीय अभिव्यक्ति के साथ उससे अलग शृंगार की मौलिक छवियों का चित्रण भी किया है। नायक-नायिका के प्रेम प्रसंग, उनके हाव-भाव, मान-मनुहार और विविध आंगिक चेष्टाओं और मनोवृत्ति का सुंदर चित्रण बिहारी के दोहों में है। नायिका द्वारा नायक से संवाद और प्रेम-भाव का यह शृंगारिक चित्रण इस संयोग शृंगार के दोहे में देखा जा सकता है :

बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं, भौंहनु हँसै, दैन कहैं, नटि जाइ।।

नायक से बात करने की लालसा से मुरली को नायिका द्वारा छिपाया जाना, नायक द्वारा माँगने पर भौंहों में हँसना, हास-परिहास, सौगंध खाना और फिर मुरली देने से इंकार करना; नायक-नायिका की आँगिक-चेष्टाओं और शृंगार के संयोग पक्ष का सुंदर चित्रण है। संयोग चित्रण में बिहारी ने बाहरी व्यापार चमत्कारिक वर्णन के साथ आंतरिक हाव-भाव का भी सुंदर वर्णन किया है। नायक-नायिका द्वारा भरे भवन में नैनो के द्वारा आपसी संवाद का यह संयोग चित्रण विरल है :

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे भौन मैं करत हैं, नैननु हीं सब बात।।

संयोग शृंगार में बिहारी ने बाहरी हाव-भाव और व्यापार के साथ नायक-नायिका के अंतर्मन में होने वाली आसक्ति और संवेदना का सुंदर चित्रण किया है।

विरह चित्रण शृंगार काव्य की कसौटी है। रीतिसिद्ध कवि होने से बिहारी की कविता में विरह की दशा का शास्त्रीय चित्रण भी है और विरह की स्वाभाविक और सहज अनुभूतियाँ भी। हालाँकि विरह का स्वच्छंद भाव कमतर है।

बिहारी के काव्य में शास्त्रीय दृष्टि से किया गया विरह चित्रण कृत्रिम और चमत्कारिक लगता है। स्वाभाविक विरह का वर्णन करते समय उनकी कविता में गहन भाव संवेदना होती है। विरह में अतिशयोक्ति और चमत्कारिक चित्रण का कुछ उदाहरण निम्नलिखित है :

इत आवति चलि, जाति उत चली, छसातक हाथ।

चढ़ी हिंडोरैं सौं रहै, लगी उसासनु साथ।।

अर्थात विरह में नायिका इतनी कृशकाय हो गई है कि वह कदम कहीं और रखती है और पड़ते कहीं और हैं। साँस लेने और छोड़ने के क्रम में अपनी जगह से सात हाथ पीछे और आगे चली जाती है। एक अन्य कविता में विरह-ताप के संदर्भ में वे लिखते हैं कि विरह में नायिका का शरीर इतना दग्ध है कि उसे शीतल करने के लिए गुलाब जल की शीशी जो उसके ऊपर डाली जाती है वह बीच में ही सूख जाती है; शरीर पर उसकी एक बूँद भी नहीं पड़ती :

औंधाई सीसी, सु लखि बिरह-बरनि बिललात।

बिच हीं सूखि गुलाबु गौ, छीटौ छुई न गात।।

प्रिय के विदेश चले जाने पर उसके प्रवास के दौरान ऊपजे विरह के चित्रण की 'बिहारी सतसई' में अधिकता है। प्रवास संबंधी विरह वर्णन में स्वाभाविकता और मार्मिकता भी अधिक है। प्रिय के परदेश जाने की सूचना पाकर प्रिया की बेचैनी बढ़ गई है, उसका गला रूँध गया है, नैनो मे विरह के आँसू भर आए हैं। स्थिति ऐसी हो गई है कि वह जाते हुए नायक से कुछ बोल भी नहीं पा रही है :

ललन-चलन सुनि चुपु रही, बोली आपु न ईठि।

राख्यौ गहि गाढ़ैं गरैं मनौ गलगली डीठि।।

विरह की संवेदना का एक रंग तो यह है जिसमें नायिका प्रिय के बिछोह में शांत है तो दूसरी ओर यह नायिका अपने प्रिय से यह शिकायत करती है कि आपने अपना मन तो मुझे दे दिया, वह मेरा हो गया है, अब कहीं और जाने को तैयार नहीं हैं; लेकिन आप हैं कि उसे सौतिन के हाथ देना चाहते हैं, ऐसा जुल्म तो न कीजिए :

मोंहि दयौ, मेरौ भयौ, रहतु जु मिलि जिय साथ।

सो मनु बाँधि न सौं पियै, पिय, सौतिनि कैं हाथ।।

विरह में नायिका ने नायक के 'अरगजे' (सुगंधित द्रव्य) को 'अबीर' बना के लगा लिया; विरह संताप की यह उदात्तता बिहारी को रीतिकालीन कवियों में विरह के श्रेष्ठ कवि का दर्जा प्रदान करती है :

मैं लै दयौ, लयौ सु, कर छुबत छिनकि गौ नीरू।

लाल, तिहारौ अरगजा उर ह्वै लग्यौ अबीरू।।

बिहारी ने श्रृंगार चित्रण मे विशेष कर विरह चित्रण में कुछ ऐसी मौलिक उद्भावनाएँ की हैं जो उनकी कविता को उत्कृष्ट बनाती हैं। विरहणी की दशा को देखने के लिए बिहारी का यह आग्रह तो खूब है जिसमें वह विरहणी के तन की दारूण दशा दिखाना चाहते हैं। विरह का यह विरल उदाहरण है :

जौ वाके तन की दसा देख्यौ चाहत आपु।

तौ बलि, नैंक बिलोकियै चलि अचकाँ, चुपचापु।।

9.3.2 सौंदर्य और प्रेम-चित्रण

'बिहारी सतसई' श्रृंगार के साथ सौंदर्य की भी कृति है। श्रृंगार चित्रण में ऐंद्रियता को महत्व दिया जाता है, जबकि सौंदर्य में सौंदर्य के आंतरिक और बाह्य छवियों को चित्रित किया जाता है। श्रृंगार चित्रण करते समय बिहारी की कविताई सौंदर्य को अधिक तरजीह देती है। बिहारी की कविता में वस्तु, प्रकृति और मनुष्य का बहुविध सौंदर्य चित्रण किया गया है। वस्तु

सौंदर्य में कृष्ण की बाँसुरी का सुंदर चित्रण हुआ है– कृष्ण के होठों पर हरे रंग की बाँसुरी की शोभा देखते ही बनती है। हरे रंग की बाँसुरी पर होंठो, आँखों और पीतांबर की आभा पड़ने पर बाँसुरी का रंग इंद्रधनुषी हो जाता है :

अधर धरत हरि कैं, परत ओठ-डीठि-पट-जोति।

हरित बाँस की बाँसुरी, इंद्रधनुष-रँग होति ।।

नायिका के कान में पहने गए तरौना का सुंदर चित्रण करते हुए बिहारी ने लिखा है कि नायिका के कान का यह आभूषण नायिका के सिर पर पड़े सफेद वस्त्र के बीच ऐसे हिल रहा है जैसे धवल गंगा नदी के जल के बीच सूर्य अपने स्वर्णिम आभा के साथ प्रतिबिंबित हो रहा है :

लहतु सेतसारी ढप्यौ, तरल तर्यौना कान।

पर्यो मनौ सुरसरि-सलिल, रबि-प्रतिबिंदु बिहान।।

यह बिहारी की कल्पना शक्ति का सामर्थ्य है जिसमें वह इन वस्तुओं का खूबसूरत सौंदर्य चित्रण करते हैं। प्रकृति का सौंदर्य चित्रण करते समय बिहारी जब अलंकारो का प्रयोग करते हैं, उसकी रंगत और गहरी हो जाती है। नायक और नायिका के सौंदर्य में प्रकृति के छवि सौंदर्य की कल्पना अद्भुत है। अलंकार का प्रयोग करते हुए प्रकृति सौंदर्य का यह उदाहरण देखिए :

सोहत ओढ़ैं पीतु पटु स्याम, सलौनें गात।

मनौ नीलमनि-सैल पर, आतपु पर्यो प्रभात।।

x x x x

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट-पट झीन।

मानहुँ सुरसरिता-बिमलजल उछरत जुग मीन ।।

रीतिकालीन कवियों का प्रेम श्रृंगार से जुड़कर ही विकसित होता है। ऐंद्रिक प्रेम से अतींद्रिय प्रेम की छवि यहाँ देखी जा सकती है। बिहारी का कवि-व्यक्तित्व भले ही नागर हो लेकिन उनमें किसानी और पशुपालन संस्कृति की भी झलक है। राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण करते हुए बिहारी की कविता की मनमोहक छवियों को देखा जा सकता है। प्रेम की गहन अनुभूति और पशुपालन संस्कृति का निम्नलिखित दोहा प्रमाण है। इस दोहे में कृष्ण राधा से अपनी गाय के झुंडो में उनकी गाय न मिलाने का आग्रह करते हैं, लेकिन कृष्ण के प्रेम में मगन राधा कहाँ मानने वाली वह गायें मिला देती हैं। फिर इस कार्यकलाप में दोनों शामिल हैं; दोनों की आँखें मिल जाती हैं तो मन भी मिल जाता है :

उन हरकी हँसी कै, इतै, इन सौंपि मुसकाइ।

नैन मिलैं मन मिलि गए दोऊ, मिलवत गाइ।

प्रेम में प्रेमिका और प्रेमी को जग का ख्याल नहीं रहता। नायिका जगनिंदा के डर से प्रेमी के घर से बाहर जाती है लेकिन प्रेम की संवेदना इस कदर प्रभावी हैं कि वह बार बार प्रेमी के घर ही पहुँच जा रही है :

चलतु धेरू घर घर, तऊ घरी न घर ठहराइ।

समुझि उहीं घर कौं चलै, भूलि उहीं घर जाइ।।

प्रेम की इस विकलता और भावुकता को प्रेम का उन्माद या संकीर्णता कहना गलत होगा। यह प्रेम की विकलता का स्वाभाविक चित्रण है।

ऐहिक प्रेम की गहराई विरह की दशा में प्रेम के उदात्त भाव में रूपांतरित हो जाती है। यह सिर्फ भक्त कवियों में नहीं है, रीतिकवि बिहारी के काव्य में भी मौजूद है। कृष्ण गोकुल से मथुरा चले गए हैं, राधा की आँखों मे विरह के उस क्षण में आँसू की कुछ बूँदें उनके सामने बहती यमुना नदी के जल में गिर जाती है और वह जल कुछ समय के लिए खारा हो जाता है। यह प्रेम की गहराई की ही अभिव्यक्ति है :

स्याम-सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा-तीरू।

अँसुवनु करति तरौंस कौ, खनिकु खरौंहों-नीरू।।

बिहारी की प्रेम-दृष्टि रोमांटिक प्रेम की सहज अभिव्यक्ति है जो उस युग के सामंती समाज के प्रभाव से नही उसके प्रतिरोध में साहसिक प्रेम कहा जाएगा।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) बिहारी ..... धारा के कवि हैं।

(रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त)

(ख) बिहारी का पूरा नाम ..... है।

(बिहारीदास, बिहारी निधि, बिहारी लाल)

(ग) बिहारी की काव्य भाषा ..... है।

(ब्रज, अवधी, बघेली)

2. निम्नलिखित वाक्यों में सही (√) गलत (x) का निशान लगाइए।

(क) बिहारी मुक्तक परंपरा के कवि हैं।

(ख) बिहारी ने 'बिहारी सतसई' में दोहा छंद का प्रयोग किया हैं।

(ग) बिहारी की कविता में शास्त्रीय परंपरा का पूर्णतया अनुकरण किया गया है।

(घ) बिहारी दरबारी परंपरा के कवि नहीं हैं।

3. 'बिहारी सतसई' का संक्षिप्त परिचय दीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

4. बिहारी की श्रृंगार भावना की विशिष्टताओं का सोदाहरण उल्लेख कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5. बिहारी के सौंदर्य वर्णन पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

.....

.....

9.4 बिहारी की कविता में भक्ति, नीति और लोक

'बिहारी सतसई' में शृंगार के साथ भक्ति और नीति के भी प्रचुर दोहे लिखे गए हैं। दोहे शृंगार के ही विस्तार लगते हैं। लोक जीवन का परिदृश्य भी इसी में घुला-मिला है।

बिहारी की कविता में भक्ति का चित्रण उनके शृंगार और सौंदर्य संबंधी दोहों के बीच उनकी काव्य शोभा को बढ़ाता है। सगुण-निर्गुण के विवाद में पड़े बिना वह अपनी कविता में भक्ति का चित्रण करते हैं। 'बिहारी सतसई' का प्रथम दोहा तो राधा को समर्पित है। राधा जो कृष्ण की सर्वस्व है, जिनकी छाया से कृष्ण की आभा सतरंगी हो जाती है।

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परैं स्यामु हरित-दुति होइ।।

बिहारी की भक्ति संबंधी कविता की यह विशेषता है कि वह कृष्ण भक्ति में उनके सौंदर्य की विरलता का चित्रण करते हुए अपनी भक्ति का प्रदर्शन करते हैं।

बिहारी कहते हैं कि हे मुरारि! दुनिया भले ही मुझे ताने दे, मैं अपने टेढ़े स्वभाव को नहीं छोड़ूँगा, क्योंकि आप की त्रिभंगी छवि को अगर मैं अपनी कविता में लाना चाहता हूँ तो उसमें भी विविध भावों का समावेश करना पड़ेगा। सहज और स्वाभाविक होने पर आपकी त्रिभंगी छवि न समा सकेगी। अतः मैं अपनी कुटिलता न त्यागूँगा :

करौ कुबत जगु, कुटिलता तजौं न, दीनदयाल।

दुखी होहुगे सरल हिय बसत, त्रिभंगी लाल।।

बिहारी को लोक की गहरी पहचान है। नीति के दोहे में उनके लोक ज्ञान की परख होती है। मानवीय स्वभाव और जीवन बोध को उन्होंने कई दोहों में व्यक्त किया है :

कनुक कनक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाइ।

उहिं खाऐं बौराइ, इहिं पाऐं हीं बौराइ।।

इस दोहे में धतूरा और स्वर्ण की अधिकता की निंदा बिहारी ने की है। दोनों की अधिकता मनुष्य को पागल या बुद्धिहीन कर देती है। बिहारी को शासन-प्रशासन की गहरी समझ थी। उनके अनुसार जिस राज्य में दोहरा शासन होता है उसकी प्रजा दुखी ही रहती है :

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़ै दुख-दंदु।

अधिक अँधेरौ जग करत मिलि मावस रबि-चंदु।।

संसार में दुष्ट और खल व्यक्ति जिसमें बुरे गुण भरे हैं, उसका समाज में बड़ा आदर होता है जबकि सीधे और सरल व्यक्ति को यह संसार तवज्जों नहीं देता :

बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु।

भलौ भलौ कहि छोड़ियै, खोटैं ग्रह जपु, दानु।।

बिहारी को प्रायः आलोचकों ने नागर संस्कृति का कवि कहा है। यों वह नागर कवि हैं भी लेकिन सिर्फ नागर जीवन का ही चित्रण उनकी कविता में नहीं है। बिहारी में लोक जीवन और लोक संस्कृति की गहरी समझ और संवेदना है। यमुना तट पर नायिका के स्नान करने,

एड़ी घिसने और विरह में नायिका के बावलेपन के चित्रण में बिहारी के ग्राम्य-संस्कृति के सजग बोध का ही पता चलता है :

मुँह धोवति, एड़ी घसति, हसति, अनगवति तीर।

धसति न इंदीबरनयनि, कालिंदी कैं नीर।।

X X

हौं हीं बौरी बिरह-बस, कै बौरौ सबु गाउँ।

कहा जानि ए कहत हैं ससिहिं सीतकर-नाउँ।।

बिहारी के लोक संबंधी ज्ञान को वहाँ भी देखा जा सकता है जब वह जन साधारण में प्रचलित लोक रंजक खेलों, नृत्यों और क्रिया-कलापों का चित्रण करते हैं। पतंगबाजी, नट-विद्या, आँख-मिचौनी ऐसे ही खेल हैं जिनमें सामूहिकता में यह खेल अधिक आनंद की अनुभूति कराता है :

फूले फदकत लै फरी पल कटाच्छ-करवार।

करत बचावत बिय नयन-पाइक धाइ हजार।।

X X

इत तैं उत, उत तैं इतै, छिन न कहूँ ठहराति।

जक न परति, चकरी भई, फिरि आवति फिरि जाति

लोक जीवन की ये छवियाँ बिहारी को रीति काव्य का विशिष्ट कवि बनाती हैं।

9.5 बिहारी की कविता की काव्य भाषा और काव्य रूप

'बिहारी सतसई' ब्रजभाषा का प्रतिमान है। बिहारी ने रीतिशास्त्र पर ग्रंथ नहीं लिखा है लेकिन रीतिशास्त्र की कलात्मकता के वे पारखी हैं। दोहा जैसे छोटे छंद में उन्होंने भाषा की समाहार शक्ति और ध्वन्यात्मकता एवं वाग-वैचित्र्य का सुंदर प्रयोग किया है। बिहारी की भाषा के महत्व को रेखांकित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं, ''बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूप का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है। ब्रजभाषा के कवियों में शब्दों को तोड़-मरोड़ कर विकृत करने की आदत बहुतों में पाई जाती है। भूषण और देव ने शब्दों का बहुत अंग-भंग किया है और कहीं-कहीं गलत शब्दों का व्यवहार किया है। बिहारी की भाषा बहुत कुछ इस दोष से भी मुक्त है।''

बिहारी ने काव्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। भक्तिकाल में ब्रजभाषा का विकास अष्टछाप के कवियों– सूर और नंददास के हाथों हो चुका था। बिहारी के यहाँ ब्रजभाषा की सर्जनात्मकता का चरम दिखाई देता है। बिहारी ने ब्रजभाषा में उसकी सहवर्ती जनपदीय भाषाओं का प्रयोग कर उसको समृद्ध बनाया है विशेष रूप से बुंदेलखंडी, अवधी शब्दों के चयन की सजगता और अलंकरण से बिहारी ने ब्रजभाषा का भाषिक सौंदर्य बढ़ाया। ब्रजभूमि की उत्सवी संस्कृति और कला की शास्त्रीय पद्धति से बिहारी ने भाषा में जो संस्कार पैदा किया वह रीतिकाल में अनूठी है। ब्रजभाषा को इस नए संस्कार से समृद्ध करने के संदर्भ में 'मध्यकालीन हिंदी भाषा' पुस्तक में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने सही लिखा है, ''ध्वन्यात्मक और व्याकरणिक दोनों स्तरों पर कवि की यह भाषिक तराश रीतिकालीन मनोवृत्ति और

मुगलकालीन कला की बारीक पसंदी के समानांतर चलती है। इस संदर्भ में बिहारी को रीतिकालीन काव्य भाषा का प्रतिनिधि कहा जा सकता है।''

'उक्ति वैचित्र्य' और 'अर्थ गांभीर्य' के द्वारा बिहारी ने भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का कौशलपूर्ण प्रयोग किया है। छोटे और अर्थ गर्भित शब्दों के प्रयोग भाषा को विलक्षण बनाता है। 'उक्ति वैचित्र्य' और 'अर्थ गांभीर्य' का यह दोहा नायाब उदाहरण है :

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे भौंन मैं करत है, नैननु ही सब बात।।

नेत्रों की भाषा का इसमें सांकेतिक प्रयोग है। आँखों ही आँखों में सारी बातें भरे भवन में करना, रीझना, खीझना, खिलना और अंत में नेत्रों के दो चार होने से लजाने की सुंदर अभिव्यक्ति यहाँ है। बिहारी अपनी समास पद्धति के लिए भी जाने जाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल सफल कवि में कल्पना की समाहार शक्ति और समास शक्ति का संयोजन आवश्यक मानते हैं। बिहारी में ये दोनों क्षमताएँ विद्यमान हैं।

छोटे दोहे में पौराणिकता की सफल योजना, बड़े प्रसंगो का सफल नियोजन, उपमा, रूपक, सांग रूपक, असंगति अलंकारो का सुंदर विधान– बिहारी की समास पद्धति की विशेषता है। असंगति अलंकार का यह दोहा जिसमें प्रेम-व्यापार को दो पंक्तियों में कौशलपूर्वक रचा गया है :

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।

परति गाँठि दुरजन-हियैं, दई, नई यह रीति।

बिहारी थोड़े में बहुत कहने वाले कवि के रूप में ख्यात हैं। समास पद्धति की इसी विशेषता के कारण उन्हें 'गागर में सागर' भरने वाले कवि के रूप में जाना जाता है।

बिहारी प्रबंधकार नहीं मुक्तक काव्य के कवि हैं। दोहा जैसे मुक्तक काव्य रूप का प्रयोग वे मुख्य रूप से करते हैं। रहीम ने दोहा की खूबी में जो कहा वह बिहारी के दोहों पर पूरी तरह लागू किया जा सकता है :

दीरघ दोहा अरथ के आखर थोड़े आहिं।

ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमंति कूदिं चलि जाहिं।।

बिहारी के दोहों के लिए कहा भी गया है– 'सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।' बिहारी दोहा में समास पद्धति, व्यंग्य-वैचित्र्य और अर्थ गांभीर्य पिरोने वाले दक्ष कवि हैं। दोहा में सूक्तियों और मुहावरों का सुंदर प्रयोग बिहारी के यहाँ मौजूद है। इनका प्रयोग वह शब्द और अर्थ के चमत्कार के लिए करते हैं, इसके साथ ही दोहों में रस की व्याप्ति पर भी सूक्ष्म दृष्टि रखते हैं। उनके यहाँ दोहा में माधुर्य गुण की अधिकता है। अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन में भी आकर्षण है :

इत आवति चलि, जाति उत चली, छसातक हाथ

सूक्तियों का प्रयोग देखें :

नल-बल जलु ऊँचैं चढ़ै, अंत नीच कौ नीचु

X X

बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु

X X

अनबूड़े-बूड़े, तरे, जे बूड़े सब अंग

बिहारी अपने अलंकार प्रयोग के लिए खूब सराहे गए हैं। रीतिकाल को कुछ आलोचक अलंकार की अधिकता के कारण अलंकृत काल भी कहते हैं। बिहारी की कविता में कहीं-कहीं तो अलंकार चमत्कार उत्पन्न करने का काम करता है लेकिन प्रायः वह कविता की स्वाभाविक प्रकृति के अनुकूल होता है। शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों की सर्जनात्मक छवियाँ बिहारी के काव्य में मौजूद है। यमक और श्लेष तो उनका प्रिय अलंकार है। यमक अलंकार के उदाहरण के रूप में इस छोटे दोहे की चर्चा बार-बार की जाती है :

कनकु कनक तैं सौगुनौ, मादकता अधिकाइ।
उहिं खाऐं बौराइ, इहिं पाऐं हीं बौराइ।।

इसमें 'कनक' शब्द को 'स्वर्ण' और 'धतूरे' के अर्थ में प्रयोग किया गया है। इसी तरह श्लेष अलंकार में सुमन का प्रयोग सुंदर मन और पुष्प के अर्थ में है। इसी प्रकार अनुप्रास तद्गुण, अतिशयोक्ति, विरोधाभास उपमा, रूपक आदि अलंकारों का सुंदर विधान बिहारी के काव्य में है। बिहारी की कविता में उनके द्वारा प्रयोग किए गए अलंकार रूप और भाव दोनों को समृद्ध करते हैं।

बोध प्रश्न

6. निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (✗) का चिह्न लगाइए।

(क) बिहारी को प्रायः आलोचकों ने नागर संस्कृति का कवि कहा है। ( )

(ख) बिहारी ने धतूरे की तुलना पानी से की है। ( )

(ग) बिहारी की भाषा में मैथिली के भी शब्द आए हैं। ( )

(घ) 'कनकु कनक तैं सौगुनौ, मादकता अधिकाइ'। इस पंक्ति में यमक अलंकार का प्रयोग हुआ है। ( )

7. बिहारी सिर्फ सौंदर्य और शृंगार के ही कवि नहीं है। इस कथन पर अपना मत व्यक्त कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8. बिहारी की काव्य भाषा की विशिष्टताओं का वर्णन कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9. बिहारी की 'बहुज्ञता' का संक्षिप्त विवेचन कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.6 बिहारी की कविता का वाचन और आस्वादन

कविता का वाचन

देखिए– परिशिष्ट

कविता का आस्वादन

- **मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोई। ...**

संदर्भ

यह भक्तिपरक दोहा 'बिहारी सतसई' से लिया गया है। रचनाकार रीतिसिद्ध कवि बिहारी हैं। यह 'बिहारी सतसई' का मंगलाचरण है। इस दोहे की यह विशेषता है कि इसमें कवि इष्ट रूप में 'राधा नागरी' की वंदना कर रहे हैं।

व्याख्या

कवि बिहारी का कहना है कि राधा नागरी मेरी सभी बाधा और कष्टों को दूर करें जिनके गौर शरीर की छाया पड़ने से कृष्ण (काला) रंग के श्याम का रंग हरित हो जाता है। दूसरे अर्थ में कवि कहता है कि वह नागरी राधा मेरी सभी सांसारिक बाधाओं को दूर करें जिनके शरीर के छाया मात्र का ध्यान करके श्याम (कृष्ण) का मन प्रसन्न हो जाता है। उनके मन

में प्रकाश फैल जाता है। पहले अर्थ में राधा की सुंदरता यानि की उसके शरीर के रंग– गुराई की सरहना की गई है। दूसरे अर्थ में राधा एवं कृष्ण के बीच प्रेम और रागात्मकता का संकेत किया गया है।

विशेष

(I) बिहारी के इस दोहे में 'गागर में सागर' वाली उक्ति पूरी तरह से लागू होती है। कवि का रंग बोध काबिले तारीफ है। 'झाँई', 'स्यामु', 'हरित' में श्लेष अलंकार है। 'झाँई का अर्थ है– छाया, झलक; 'स्यामु' का अर्थ है– कृष्ण और काला रंग और 'हरित' का अर्थ है हरा रंग।

(II) यहाँ सूर की रंग रची राधा रीतिकाव्य में पहुँचकर नागर हो जाती हैं। इसे युगीन परिवेश और बिहारी के नागर बोध से जोड़कर भी देखा जा सकता है।

- **कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात। ...**

संदर्भ

बिहारी रचित 'बिहारी सतसई' के इस दोहे में चतुर नायक-नायिका के आँखों की चेष्टा से भावों की अभिव्यक्ति का सुंदर चित्रण है। भरे हुए भवन में नेत्रों के द्वारा ही संवाद हो सकता है। इस दोहे में नायक नायिका से परिजनों से भरे भवन में प्रेम निवेदन करता है।

व्याख्या

कवि कहता है कि देखो नायक और नायिका कितने चतुर हैं कि स्वजनों और गुरुजनों से भरे भवन में आँखों-आँखों में ही सारी अभीष्ट बातें कर लेते हैं। अपने मन की सारी बातें एक दूसरे से बिना बोले आँखों से कह लेते हैं। इस संवाद की प्रक्रिया में नायक के प्रणय निवेदन को नायिका मना कर देती है तो नायक उसकी इस अदा पर रीझ जाता है तब नायिका, नायक के रीझने की अदा पर खीझ जाती है, फिर दोनों मेल कर लेते हैं। नायिका के द्वारा प्रेम निवेदन स्वीकार कर लेने पर नायक पुनः हँस देता है जिससे नायिका लज्जित हो जाती है।

विशेष

इस दोहे में बिहारी की अद्‌भुत संवाद कला की दक्षता का पता चलता है। शब्द मैत्री भी सुंदर है।

- **बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ। ...**

व्याख्या

प्रस्तुत दोहे में नायिका (राधा) द्वारा नायक (कृष्ण) से बातचीत करने के लालच से कृष्ण की बाँसुरी चुराने का सुंदर चित्रण है। कृष्ण और राधा के इस प्रेम संवाद का जिक्र एक सखी दूसरे सखी से करती है। राधा ने बतरस की लालच से कृष्ण की बाँसुरी को कहीं छिपाकर रख दिया है। इसके बाद कृष्ण राधा से संवाद करते हैं। उनसे पूछते हैं और कहते हैं कि शपथ बाबा की कि जो मेरी मुरली खोज देगा उसका अहसान मैं जीवन भर न भूलूँगा। कृष्ण

की यह बात सुन राधा भौंहो से (आँखों से) हँसती हैं। उनकी हँसी से कृष्ण को विश्वास हो जाता है कि उनकी मुरली राधा ने ही चुराई है। वह कृष्ण को मुरली देने का वादा करती हैं लेकिन देने से मुकर जाती हैं। इस तरह प्रेम से भरा संवाद चलता है।

- **मोहन-मूरति स्याम की अति अदभुत गति जोई। ...**

व्याख्या

जिस श्याम (कृष्ण) की मूर्ति मन को मोहने वाली है उसकी लीला (गति) भी विचित्र है। वह चित्त के अंदर अर्थात हृदय में रहता है, परंतु अंदर रहने के बावजूद समस्त संसार में वह प्रतिबिंबित होता है।

- **अधर धरत हरि कैं, परत ओठ-डीठि-पट-जोती। ...**

व्याख्या

कृष्ण जब अपने ओठ पर बाँसुरी रखते हैं तब उस पर उनके ओठ (लाल), दृष्टि यानी आँख (काली) तथा वस्त्र (पीली) की ज्योति पड़ती है और इस कारण हरे रंग के बाँस की बाँसुरी इंद्रधनुष की तरह दीखने लगती है।

- **तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु। ...**

व्याख्या

बिहारी कहते हैं कि तीर्थ यात्रा को छोड़ कृष्ण और राधा के शरीर की कांति से अपना प्रेम बढ़ाओ। इस अनुराग से ब्रज के निकुंज की राह, जहाँ राधा-कृष्ण क्रीड़ा करते हैं, वह कदम-कदम पर प्रयाग अर्थात तीर्थराज हो जाता है। तात्पर्य यह है कि तीर्थयात्रा से किसी एक

तीर्थ का पुण्य प्राप्त होता है लेकिन स्वयं भगवान कृष्ण और राधा से प्रेम बढ़ाने से तीर्थराज प्रयाग का पुण्य ब्रज में ही प्राप्त हो जाता है।

- **या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहीं कोई। ...**

व्याख्या

इस अनुरागी चित्त की विलक्षणता को कोई नहीं जानता। ज्यों-ज्यों यह श्याम रंग (काले रंग) में डूबता है और उज्ज्वल (सफेद) होता जाता है। यहाँ तात्पर्य यह है कि श्याम वर्ण के कृष्ण के प्रेम में मनुष्य जितना डूबता जाता है उसका अंतःकरण उतना ही निर्मल होता जाता है।

- **नहिं परागु, नहीं मधुर मधु, नहीं बिकासु इहिं काल। ...**

व्याख्या

फूल अभी विकसित नहीं हुआ है। वह कली के रूप में है। उसमें न तो पराग बना है, न ही मधु। हे भ्रमर! तू अभी से उससे बँध गए हो, आगे फूल की क्या दशा होगी? कवि ने कली और भँवरे के माध्यम से आसक्त व्यक्ति को शिक्षा दी है कि प्रेम एवं रागात्मकता की एक उम्र होती है। समय से पूर्व उसमें डूब जाना औचित्यपूर्ण नहीं है।

- **संगति-दोषु लगै सबनु, कहे ति साँचे बैन। ...**

व्याख्या

कवि कहता है कि यह सत्य वचन है कि संगति का दोष सबको लगता है। अर्थात जो जैसे लोगों के साथ रहता है उसमें वैसी प्रवृत्ति आ जाती है, वैसे ही जैसे टेढ़ी भृकुटी के साथ आँख की गति भी टेढ़ी हो जाती है।

9.7 सारांश

- बिहारी रीतिकाव्य के महत्वपूर्ण कवि हैं। उनकी रचना 'बिहारी सतसई' रीतिकाल की प्रतिनिधि रचना है। बिहारी सतसई में 'गागर में सागर' की तरह दोहा जैसे छोटे छंद में उक्ति वैचित्र्य और अर्थ गांभीर्य का समावेश है।
- 'बिहारी सतसई' में सतसई और मुक्तक परंपरा का आत्मसात है तो इसमें मौलिकता का विधान भी है।
- भक्ति, नीति, ज्योतिष, कला, श्रृंगार, सौंदर्य और प्रेम का सुंदर निदर्शन बिहारी के काव्य की खूबी है।
- भाषा पर बिहारी का एकाधिकार है। भाषा की समाहार शक्ति और समास पद्धति में वह सिद्धहस्त हैं। शास्त्रीय परंपरा के आचार्य न होने पर भी रस, छंद, अलंकार, ध्वनि और शब्दों के प्रयोग में वह सफल कवि हैं।
- ब्रजभाषा की सर्जनात्मकता का उत्तम उदाहरण है बिहारी की कविता में।
- बिहारी नागर बोध के कवि हैं लेकिन उनमें लोक-व्यापार के भी सुंदर चित्र हैं।

9.8 शब्दावली

सतसई – सात सौ दोहों या छंदों की रचना

रीतिसिद्ध – रीतिशास्त्र का अनुकरण नहीं, रीति परंपरा की व्याप्ति और मौलिक काव्य प्रयोग

गागर में सागर – थोड़े में बहुत

भाव सघनता – भाव की गहन संवेदना

विरल – विशेष

ऐंद्रिक प्रेम – शारीरिक या भौतिक प्रेम

9.9 उपयोगी पुस्तकें

- *हिंदी साहित्य का इतिहास* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल; नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
- *हिंदी साहित्य का अतीत-2* – विश्वनाथ प्रसाद मिश्र; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- *रीतिकाव्य की भूमिका* – डा. नगेंद्र; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- *बिहारी काव्य का नया मूल्यांकन* – डा. बच्चन सिंह; हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी
- *मध्यकालीन काव्य-* भाषा रामस्वरूप चतुर्वेदी; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) रीतिसिद्ध

   (ख) बिहारीलाल

   (ग) ब्रज

2. (क) √

   (ख) √

   (ग) x

(घ) ✗

3. देखिए– भाग 9.2.2

4. देखिए– भाग 9.3.1

5. देखिए– भाग 9.3.2

6. (क) ✓

(ख) ×

(ग) ×

(घ) ✓

7. देखिए– भाग 9.4

8. देखिए– भाग 9.5

9. उत्तर पूरे पाठ को पढ़कर तैयार कीजिए।

इकाई 10 घनानंद का काव्य

इकाई की रूपरेखा

10.0 उददेश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 युगीन परिवेश जीवन परिचय और रचनाएँ

10.3 घनानंद की कविता में प्रेम, सौंदर्य और शृंगार

10.4 घनानंद के काव्य में लोक जीवन और भक्ति भावना

10.5 घनानंद की कविता का शिल्प पक्ष : काव्य भाषा, छंद और अलंकार

10.6 घनानंद की कविता का वाचन और आस्वादन

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 उपयोगी पुस्तकें

10.10 बोध पश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि घनानंद के काव्य के बारे में जानकारी दी जा रही है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- घनानंद के व्यक्तित्व और कृतित्व को समझ सकेंगे;

- रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में घनानंद के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे;
- घनानंद की स्वच्छंद प्रेम योजना और उनकी सौंदर्य अभिव्यक्ति को समझ सकेंगे;
- घनानंद के काव्य में व्यक्त लोक जीवन और भक्ति भावना को जान सकेंगे; तथा
- घनानंद के काव्य के शिल्पपक्ष की विशेषताएँ बता सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल कहा गया है। रीतिकाल का समय 1650 ई. से 1857 ई. है। शास्त्रीय काव्य लक्षणों– रस, अलंकार, ध्वनि, नायक-नायिका भेद के आधार पर काव्य-सृजन के कारण इस काव्यधारा को रीतिकाव्य कहा गया। रीतिकाव्य में काव्यशास्त्र की रीति के आधार पर ही काव्य-सृजन नहीं हुआ, उससे मुक्त होकर भी काव्य रचा गया। ऐसी काव्यधारा ही 'रीतिमुक्त' है। यह काव्यशास्त्र की बँधी-बँधाई परिपाटी से मुक्त स्वछंद प्रवृत्ति का काव्य है। इस काव्य धारा के कवियों में घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर तथा द्विजदेव का नाम लिया जाता है। इस काव्य परंपरा के प्रतिनिधि कवि घनानंद हैं। घनानंद की कविता में रीतियुगीन जड़ काव्यशास्त्र आधारित कविता का विरोध है। युगीन रूढ़िवादी सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति भी उनकी कविता में गहरा प्रतिरोध है। वह स्वच्छंद प्रेम के आग्रही कवि हैं। प्रेम घनानंद की कविता का केंद्रीय विषय है। स्वच्छंद प्रेम के इसी रूप में श्रृंगार और सौंदर्य की संवेदना भी अंतर्भुक्त है। प्रेम की स्वच्छंद अभिव्यक्ति विरह की श्रृंगारिक कविता में रूपायित होती है। प्रेम की आत्मानुभूति को कविता में रचने वाले घनानंद ने जीवन और कविता को अलग नहीं माना। उनके जीवन की अनुभूति ही कविता की अनुभूति है। उन्होंने लिखा भी है, 'मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।' स्वानुभूति चेतना के कवि घनानंद की

कविता में सूफी प्रेमाख्यानक परंपरा का गहरा असर है। कवित्त, सवैय्या और कुंडलिया जैसे काव्यरूपों में घनानंद ने सर्जनात्मक काव्यभाषा का प्रयोग किया है। काव्यभाषा प्रयोग में भी घनानंद ने स्वच्छंद काव्य संवेदना का निरूपण किया है। इसी रूप में वह रीतिमुक्त स्वच्छंद काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं।

10.2 युगीन परिवेश : जीवन परिचय और रचनाएँ

रीतिकाल पतनशील सामंती समाज की देन है। युगीन दरबारी संस्कृति में श्रृंगारिकता का साहित्य अधिक लिखा गया। काव्यशास्त्रीय कसौटी को आधार बनाकर रस, अलंकार, नायिका भेद पर लिखे गए ग्रंथों में भी श्रृंगारिकता की प्रधानता थी। युगीन राजनीतिक परिवेश में भी इसी तरह के साहित्य-सृजन का अवकाश था। श्रृंगार के साथ भक्ति और वीरभाव की कविताएँ भी इस युग में रची गईं लेकिन उनमें पूर्ववर्ती काव्यधाराओं– आदिकाल और भक्तिकाल का ताप न था। युगीन परिवेश का असर घनानंद के काव्य पर भी पड़ा। श्रृंगारिकता उनके काव्य का प्रधान विषय बना। स्वच्छंद व्यक्तित्व और प्रेम की गहरी संवेदना के कारण वे युगीन रीतिकालीन श्रृंगारिक कविता का अतिक्रमण करते हैं। इसी रूप में वह स्वच्छंद प्रेम व्यंजना और रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि कहलाए। रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि राज्याश्रय में पलने वाले कवि नहीं थे। वे साधारण जन समाज से निकले हुए रचनाकार थे।

घनानंद का जन्म 1689 ई. में ब्रजक्षेत्र में हुआ। वे फारसी साहित्य के गंभीर अध्येता थे। दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मीर मुंशी थे। वह मुहम्मदशाह 'रंगीले' के दरबार में कवि के रूप में नहीं बल्कि प्रतिष्ठित मीर मुंशी के रूप में थे। घनानंद कवित्व से अधिक उस दरबार में अपने गायन कला के लिए जाने जाते थे। उसी दरबार की सुजान नामक वेष्या से

अतिशय प्रेम करते थे। दरबार में घनानंद की प्रतिष्ठा के कारण कुछ कुचक्रियों ने उन्हें दरबार से बाहर निकालने के लिए एक कुचक्र रचा, जिसमें वे सफल भी हुए। दरबारियों ने राजा को बताया कि घनानंद बहुत अच्छा गाते हैं। राजा ने उन्हें गाने को कहा। उन्होंने गाने से मना कर दिया। दरबारियों ने राजा को बताया कि वह सुजान के कहने पर जरूर गाएँगे। सुजान को बुलाया गया। सुजान के अनुरोध पर घनानंद ने गाना गाया और गाते समय इतने भाव-विभोर हो गए कि मुँह सुजान की तरफ और पीठ राजा की तरफ कर लिया। इस अशिष्टता के कारण राजा ने घनानंद को दरबार से बाहर निकाल दिया। जाते समय घनानंद ने सुजान से साथ चलने का आग्रह किया लेकिन सुजान ने मना कर दिया। दुखी होकर घनानंद वृंदावन चले गए। वृंदावन में वह निंबार्क संप्रदाय में दीक्षित हुए और 'सखी भाव' के उपासक बनें। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार अहमदशाह अब्दाली के दूसरे आक्रमण के दौरान 1761 ई. में मथुरा में घनानंद की हत्या कर दी गई।

घनानंद के नाम पर भी विवाद है। कवि ने अपने नाम का विविध रूपों में प्रयोग किया है। घनानंद, आनंदघन और घनआनंद उनके प्रमुख नाम हैं। साहित्य में वह घनानंद और आनंदघन नाम से प्रसिद्ध हुए। घनानंद ने कुल कितनी रचनाएँ रची इस पर भी पर्याप्त विवाद है। आचार्य विष्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'घनानंद ग्रंथावली' में घनानंद की 39 कृतियों को संकलित किया है :

1.	सुजान हित	11. अनुभव चंद्रिका	21. कृष्ण कौमुदी	31. मुरतिकामोद
2.	कृपाकंद	12. रंग बधाई	22. धाम चमत्कार	32. मनोरथ मंजरी
3.	वियोगबेलि	13. प्रेम-पद्धति	23. प्रिया प्रसाद	33. छंदास्तक
4.	इश्कलता	14. वृषभानुपुर सुषमा वर्णन	24. वृंदावन मुद्रा	34. त्रिभंगी

5.	यमुनायश	15. गोकुल गीता	25. ब्रज स्वरूप	35. परमहंस वंशावली
6.	प्रीति पावस	16. नाम माधुरी	26. गोकुल चरित्र	36. ब्रज व्यवहार
7.	प्रेम पत्रिका	17. गिरिपूजन	27. प्रेम पहेली	37. गिरिगाथा
8.	प्रेम सरोवर	18. विचारसार	28. रसना यश	38. पदावली
9.	ब्रज-विलास	19. दानघाट	29. गोकुल विनोद	39. प्रकीर्णक (स्फुट)
10.	सरस बसंत	20. भावना प्रकाश	30. ब्रज प्रसाद	

प्रेम और भक्ति से संबंधित इन रचनाओं में 'सुजानहित', 'वियोगबेलि', 'इश्कलता', 'प्रेम-पत्रिका', 'दानघाट' तथा 'वृषभानुपुर सुषमा वर्णन' प्रमुख हैं। इन रचनाओं में उन्होंने कवित्त, सवैया, कुंडलिया और दोहे-चौपाई का प्रयोग किया है।

घनानंद अपने समय के विवादास्पद और स्वच्छंद व्यक्तित्व के प्रेमी कवि हैं। उनके काव्य की मूल प्रेरणा सुजान हैं। सुजान के वियोग ने उन्हें कवि बनाया। सामाजिक रीति-नीति का विरोध कर उन्होंने सुजान से प्रेम किया तो कविता की बनी-बनाई रीति-युगीन परिपाटी से अलग रीतिमुक्त काव्य संवेदना को ग्रहण किया। उनके समय में उनके निंदक भी थे तो प्रशंसक भी कम न थे।

आपके सौंदर्य की रीति अद्वितीय है। इसे जितनी बार देखा जाए नया ही लगता है। इसी प्रकार इन आँखों की। सहज वृत्ति भी अनौखीटै। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि ऐसी तृप्ति कहीं और नहीं मिलती।

ब्रजनाथ ने घनानंद की प्रशस्ति में इस पद को उद्धत किया है जिसमें घनानंद की काव्य-संवेदना की विरल अनुभूति का चित्रण किया गया है :

''जग की कविताई क धोखे रहैं, यां प्रबनिन की मति जाति जकी।

समुझै कबिता घनआनंद को, हिम आँखिन नेह की पीर तकी।।''

(काव्य संसार में प्रचलित काव्य–दृष्टि (रीतिबद्ध परम्परा) के धोखे में जो भावक घनानंद की कविता को समझने की चेष्टा करेगा, उसकी बुद्धि यह कविता न समझ पायेगी। घनानंद की कविता को वही भावक समझ सकता है जिसने 'प्रेम के पीर' को हृदय रूपी आँखों से देखा हो, भोगा हो।)

घनानंद के सामयिक मित्र ब्रजनाथ ने घनानंद की कविताओं को संगृहीत कर 'घनानंद कवित्त' में दर्ज किया है। इसमें लगभग 500 कवित्त-सवैये हैं। घनानंद की कविता में प्रेम और श्रृंगार के साथ भक्ति का भी विरल स्वर है। घनानंद के सुधी आलोचक रामदेव शुक्ल इस संदर्भ में लिखते हैं, ''रीतिकालीन काव्य को दूसरे दर्जे का साहित्य मानने वाले आलोचक भी घनानंद की जिस कविता के आधार पर उन्हें 'साक्षात रसमूर्ति' कहते हैं उसी काव्य को बकवास कहकर छोड़ देने वाले घनानंद का भक्तिकाव्य कितना समृद्ध है इसकी ओर अभी तक हिंदी साहित्य के विद्वानों का ध्यान नहीं जा सका है। 1057 पद तो केवल पदावली में ही हैं। इसके अतिरिक्त संप्रदाय की रीति-नीति के अनुसार घनानंद ने दर्जनों काव्यग्रंथों की रचना की है।''

10.3 घनानंद की कविता में प्रेम, सौंदर्य और श्रृंगार

घनानंद प्रेम मार्ग के 'धीर पथिक' हैं। भारतीय शास्त्रीय-सामाजिक परंपरा में एकतरफा प्रेम को स्वीकृति नहीं मिली है जबकि फारसी काव्य परंपरा में सूफी प्रभाव में प्रेम की इस पद्धति को प्रशंसित किया गया है। घनानंद का प्रेम एकतरफा ही है। सुजान के प्रति उनके प्रेम में विरह की उदात्त छवि है। घनानंद के प्रेम निरूपण में फारसी साहित्य का अत्यधिक प्रभाव

है। उनका प्रेम जो स्वच्छंद है, शास्त्रीय रूढ़ियों का प्रतिरोध करता दिखाई देता है। प्रेम में विरह की दशा को घनानंद ने एक नया उदात्त भाव लोक प्रदान किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल घनानंद की प्रेमदृष्टि की प्रशंसा करते हुए 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं, ''विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। ये वियोग श्रृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। प्रेम का पीर, लेकर ही इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबादानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।''

घनानंद के स्वच्छंद प्रेम काव्य में अनुभूतिपरकता और भावुकता की प्रधानता है। घनानंद का प्रेम विरह परक है। उनकी कविता में उनकी प्रेमिका सुजान केंद्र में है। रीतिकालीन वासनापरक प्रेम से अलग प्रेम की प्रगाढ़ता और साधनाभाव घनानंद के प्रेम का विषय है। उनके अनुसार प्रेम का मार्ग सीधा और सरल है उसमें कपट और चतुराई की जगह नहीं है। सयानेपन की जरूरत नहीं है :

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।

तहाँ साँचे चलें तजि आपनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।

घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।

तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।।

रीतिकाल में ही नहीं समूची हिंदी कविता में प्रेम निरूपण की जैसी संवेदना घनानंद की कविता में है वह विरल है। प्रिय की निष्ठुरता को जानते और पहचानते हुए भी उसके प्रति

उन्होनें एकनिष्ठ प्रेम भाव बनाए रखा तथा प्रेम को जीवन का मुख्य विषय मान लिया। प्रिय के प्रति घोर आसक्ति और तन्मयता इस प्रेम की संवेदना है। प्रिय की उपेक्षा और उससे उपजी पीड़ा को खुद सहना, प्रिय को दोषी न मानना बल्कि इस विरह को सहेजकर रखना, प्रिय की सदैव मंगल कामना करना, यह घनानंद के प्रेम की उदात्तता ही है :

इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि कैंसे उराहनो दीजियै जू।

अब तौ सब सीस चढ़ाय लई, जु कहू मन भाई सु कीजियै जू।।

घनआनँद जीवन-प्रान सुजान तिहारियै बातनि जीजियै जू।

नित नीके रहौ तुम्हैं चाड़ कहा पै असीस हमारियौं लीजियै जू।।

घनानंद का प्रेम वासना रहित और निष्काम-प्रेम का अप्रतिम उदाहरण है। यह प्रेम का ऐसा मार्ग है जिसमें फकीराना अंदाज में बेलौस होकर ही चला जा सकता है। जैसे कि घनानंद चलते हैं। यह प्रेम की चरम दशा है जहाँ प्रेमी-प्रेमिका में फर्क नहीं रह गया है। वह दोनों एक हो गए हैं, अद्वैत हो गए हैं। आलोचक लल्लन राय 'घनानंद' पुस्तक में घनानंद के इस प्रेम तत्व का विवेचन करते हुए लिखते हैं, ''विषम होकर भी इनके प्रेम में अंततः एक समता की स्थिति मिलती है जो प्रेमी को बहुत बड़ा बना देती है। वस्तुतः यह सूफी प्रेमादर्श है जिसमें फारसी प्रेम की एकनिष्ठता और एकांतिकता सूफियों की पीड़ा, भारतीयता का आदर्श और भक्ति-भावना का सुंदर पुट मिलता है।'' प्रेम के इस स्वरूप पर घनानंद ने लिखा है :

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै, बिचार,

बापुरो हहरि वार ही तें फिरि आयौ है।

ताही एक रस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,

नेहि हरि राधा जिन्हैं देखे सरसायौ है।

ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,

पूरि लोक लोकनि उमंगि उफनायौ है।

सोई घनआनंद सुजान लगि हेत होत,

ऐसें मथि मन पै सरूप ठहरायो है।।

घनानंद ने अपने लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम को रूपायित कर दिया है। सुजान के प्रति उनका प्रेम भौतिक प्रेम से इश्वरीय प्रेम में बदल गया। घनानंद के इस प्रेम में मध्यकालीन भक्ति की चेतना का तत्व भी निहित है।

घनानंद की कविता में सौंदर्य का सूक्ष्म अंकन हुआ है। उनका सौंदर्य चित्रण अपने युगीन कवियों से भिन्न और अनूठा है। आत्मानुभूति के ठोस धरातल पर वह सौंदर्य का पुनर्सृजन करते हैं। घनानंद की सौंदर्य दृष्टि से बाह्य सौंदर्य के साथ आंतरिक सौंदर्य की हवा भी उतनी ही गहराई से चित्रित हुई है। घनानंद के प्रशंसक ब्रजनाथ ने लिखा है :

नेहि महा ब्रजभाषा-प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद कों जाने।

जोग बियोग की रीति मैं कोबिद भावना भेद सरूप कों ठानै।।

अर्थात घनानंद की कविता में व्यक्त सौंदर्य की सही परख वही कर सकता है जो खुद प्रेमी हो, ब्रजभाषा के मर्म को जानता हो, सुंदरता के भेदों की उसे परख हो। आत्मानुभूति और

भावना के भेदों की सूक्ष्मता को जानता हो। घनानंद के सौंदर्य चित्रण में स्वानुभूति की संवेदना है। घनानंद का प्रेमी आलंबन के रूप सौंदर्य में इस कदर घुल-मिल गया है कि दोनों एकमएक हो गए हैं। रूप सौंदर्य की आंतरिकता का चित्रण करते हुए नायिका के प्रति उनका भावुक प्रेमी मन तन्मय होकर अंतर सौंदर्य का उद्‌घाटन करता है :

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो-नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।

त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी, अघानि कहूँ नहिं आनि तिहारियै।

घनानंद नायिका के सौंदर्य का वायवीय चित्रण नहीं करते। भोक्ता के रूप में अंकन करते हैं। बाह्य सौंदर्य के साथ मानसिक सौंदर्य का चित्रण करते हुए वह नई भावना और कल्पना को रूपायित करते हैं। रूप सौंदर्य का एक अनूठा उदाहरण :

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छवै।

हँसि बोलन मैं छबि फूलन की बरषा, उर ऊपर जाति है ह्वै।

लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।

अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहे मनौ रूप अबै धर च्वै।।

यहाँ सौंदर्य का पारंपरिक रीतिकालीन सौंदर्य चित्रण नहीं है। कवि मुखमंडल, आँख, वाणी, लट, ग्रीवा के आकार-प्रकार का चित्रण करते हुए इनके सौंदर्य में निहित कांति और तेज का हृदय पर पड़ने वाले मनोहारी प्रभाव का अंकन करता है। अंतिम चरण का अंतिम पदबंध – 'परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै' के आलोक में ऊपर के तीनों पंक्तियों के अंग सौंदर्य और हाव-

भावों को देखने पर इस गतिशील सौंदर्य को समझा जा सकता है। सौंदर्य चित्रण में घनानंद रीतिकालीन अलंकारिक मार्ग से कुछ न कुछ ग्रहण करते हैं लेकिन उसे अपनी मौलिक प्रतिभा से अंगो की आंतरिक संवेदना के प्रभाव को अधिक लक्षित करते हैं। इसी रूप में वह अपने युगीन कवियों से अलग और विरल पहचान बनाते हैं।

घनानंद का काव्य विरह प्रधान प्रेम काव्य है। उनके काव्य में संयोग चित्रण कम, विरह का चित्र अधिक है। घनानंद के संयोग श्रृंगार में प्रिय से मिलन की, दर्शन की उत्कट अभिलाषा है। प्रेम की गहराई की अधिकता के कारण घनानंद के संयोग और वियोग में बहुत अंतर नहीं हो पाता। यहाँ संयोग में भी वियोग-सा भाव बना रहता है। वियोग मिश्रित संयोग का यह चित्रण विरल है :

''पहिले घनआनंद सींचि सुजान, कहीं बतियाँ अति प्यार पगी।

अब लाप वियोग की लाय बलाय बढ़ाय, बिसास दगानि दगी।।''

(प्रिय जो आनंद सरीखा है संयोग के क्षण में पहले आनंद की वर्षा करके, प्यार भरी बातों से मुझे भाव–विभोर कर दिया। अब वियोग में संयोग का वह आनंददायी क्षण स्मरण कर अधिक कष्ट हो रहा है। इस तरह मेरे प्रियतम ने वियोग की अग्नि में जलनें के लिए छोड़ दिया।)

घनानंद को मूलतः 'प्रेम के पीर' का कवि कहा गया है। उनकी कथनी करनी में फर्क नहीं है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल घनानंद के वियोग चित्रण की गंभीरता का विवेचन करते हुए लिखते हैं, ''यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों को लिया है पर वियोग की अंतर्दशाओं की ओर ही दृष्टि अधिक है। इसी से अनेक वियोग संबंधी पद ही प्रसिद्ध है। वियोग वर्णन भी अधिक अंतर्वृत्ति निरूपक है, वाह्यार्थ निरूपक नहीं। घनानंद ने न तो बिहारी की तरह

विरहताप को बाहरी ताप से मापा है, न बाहरी उछलकूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर की है। बाहर से यह वियोग प्रशांत और गंभीर है, न उसमें करवटें बदलना है न सेज का आग की तरह से तपना, न उछल-उछल कर भागना।'' घनानंद का प्रेम एकनिष्ठ और एकपक्षीय है। विरह की विलक्षण संवेदना। प्रेमी की पीड़ा अनिर्वचनीय है। खुद इस संवेदना को घनानंद ने 'मौन मधि पुकार' कहा है। विरह का मर्मस्पर्शी चित्रण उनके काव्य की पहचान है।

अंतर उदेग-दाह, आँखिन प्रवाह-आँसू,

देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।

सोइबो न जागिबो हो हँसिबो न रोइबो हू,

खोय-खोय आप ही में चेटक लहनि है।

जान प्यारे प्राननि बसत पै अनँदघन,

बिरह-विषम-दसा मूक लौं कहनि है।

जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यौ आयि

हाय कौन बिधि रची नेही की रहनि है।।'

घनानंद विरह को उदात्त भावभूमि पर प्रतिबिंबित करते हैं। आत्मभर्त्सना है परंतु प्रिय की अमंगल कामना नहीं है। जीवन के उत्तरार्द्ध में तो उन्होंने प्रेम साधना को इश्वरीय बना दिया। इसलिए उनके यहाँ प्रेम की जाग्रत स्थिति बनी रहती है। रामचन्द्र शुक्ल घनानंद की विरह

संवेदना की उदात्तता का चित्रण करते हुए सही लिखते हैं, ''घनानंद के श्रृंगार काव्य में विरहानुभूति के चित्र संयोग चित्रों की अपेक्षा कई गुना अधिक है। घनानंद के विरह वर्णन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह कवि विरह तीव्रता का चाहे जितना अनुभव करता और कराता हो 'निराशा' और 'विषाद' को वह पास फटकने नहीं देता। जिसकी दुहाई 'आलोचक प्रवर दिया करते हैं।''

शास्त्रों में विरह की दस अंतर दशाओं का वर्णन किया गया है– अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि जड़ता और मरण।

घनानंद के इस शास्त्रीय विरह दशा वर्णन में भी स्वाभाविकता है। उसमें कृत्रिमता रंच मात्र नहीं है क्योंकि उनका श्रृंगार वर्णन स्वच्छंद प्रेम की घनीभूत अभिव्यक्ति का ही प्रतिरूप है। शास्त्र का वह अनुकरण नहीं करते बल्कि वह उनकी स्वच्छंद प्रेम योजना का अंग है। श्रृंगार की स्वच्छंद अभिव्यक्ति में शास्त्रीय अभिव्यक्तियाँ फूटती है, व्यक्त होती है। घनानंद अपने प्रिय को सुजान, जानराय, ढरकों ही बानिवाले नाम से पुकारते हैं। वह प्रिय की निष्ठुरता पर खीजते नहीं, दुखी नहीं होते, विरह में जीवन का रस ढूँढ़ते हैं। विरह की मनोदशा उनके लिए प्रेम की कोमल स्थिति है। तभी तो वह लौकिक से आरंभ होकर अलौकिक प्रेम में तब्दील हो जाता है। अलौकिक प्रेम की यह संवेदना उन्हें सूफी काव्य के प्रेम चेतना से जोड़ता है, जिसमें प्रेमिका को इश्वर का दर्जा दे दिया जाता है।

बोध पश्न

निम्नलिखित पश्नों के उत्तर पाँच-पाँच पंक्तियों में दीजिए।

1. घनानंद की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए?

.....

.....

.....

.....

.....

2. घनानंद की कविता में 'स्वच्छंद प्रेम दृष्टि' का स्वरूप स्पष्ट कीजिए?

.....

.....

.....

.....

.....

3. घनानंद के काव्य में व्यक्त सौंदर्य-चित्रण पर प्रकाश डालिए

.....

.....

.....

.....

.....

4. निम्नलिखित कथनों में सही (√) अथवा गलत (×) का चिह्न लगाकर उत्तर दीजिए।

(क) घनानंद रीतिसिद्ध धारा के कवि हैं। ( )

(क) घनानंद रीति निरूपण करने वाले कवि हैं। ( )

(क) 'वियोगबेलि' घनानंद की काव्य-कृति है। ( )

(घ) घनानंद अपने प्रेम को 'मौनमधि पुकार' कहते हैं। ( )

10.4 घनानंद के काव्य में लोक जीवन और भक्ति भावना

घनानंद के हृदय में वृंदावन का लोक समाया हुआ है। ब्रजभूमि की संस्कृति, कृष्ण की लीलाभूमि, गोकुल की लोक संस्कृति और वहाँ के जन-जन में व्याप्त प्रेम की व्याप्ति घनानंद को खूब भाई तभी तो उन्होंने 'ब्रज-व्यवहार', 'ब्रज-विलास', 'गोकुल-चरित्र', 'गोकुल-गीत', और 'गोकुल विनोद' जैसी काव्य रचनाओं में ब्रज की लोक संस्कृति की छटा बिखेरी है। 'कृष्ण-कौमुदी' में ब्रजलोक के नायक कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हैं तो 'यमुना-यश' में वह कृष्ण के नाम ब्रजवासियों की ओर से प्रेम-पत्र लिखते हैं जिसमें कृष्ण को खूब ताने देते हैं। इस रचना में लोक के प्रेम और प्रतिरोध दोनों को देखा जा सकता है। 'राधा-कृष्ण' को केंद्रित कर 'सरस बसंत' नामक ग्रंथ में उन्होंने ब्रज के लता कुंजो, यमुना और वहां के लोक में रचे-बसे प्रेम और प्रकृति की अनोखी हवा का सुंदर वर्णन किया है :

बन बसंत बरनन मन फूल्यौ

लता-लता-झूलनि संग झूल्यौ।।

खगनि चुहक, पिक-कुहक सुहाई।

बन मनमय की फिरी दुहाई।

मलय -पवन-आगम सुखसार।

रोचक महा सुदेश सुठार।।

कुंजन के प्रकार बहु भांति।

जमुना तीर बिराजति पांति।

नव पल्लव दरपन-दुति दबै।

या बन की छवि या बन फवै।।

मूलतः प्रेम के कवि हैं घनानंद, लेकिन उनकी कविता में 'भक्ति-रस' भी कम नहीं है। जीवन के अंतिम दौर में वह भक्ति रचनाओं की ओर अग्रसर हुए। दिल्ली दरबार से अपमानपूर्वक निकाले जाने और प्रेमिका सुजान द्वारा ठुकराए जाने पर उनकी कविता में विरह की तीव्र अनुभूति फूटी और फिर भक्ति की ओर उन्मुख हुए। यों ऊपरी तौर पर उनकी कविता में 'शृंगार' और 'भक्ति' एक लगते हैं लेकिन विरह शृंगार से भक्ति की ओर वे क्रमशः बढ़ते हैं। विरह की आरंभिक कविताओं में विरह से दग्ध, प्रेम में डूबे प्रेमी की करुण पुकार है। धीरे-धीरे वह भक्ति में रूपांतरित हो जाती है। सुजान को इश्वरीय दर्जा देकर वह राधा कृष्ण की तरह उनको याद करते हैं। भक्ति का यह रूप दिव्य प्रेम की अनुभूति कराने वाला है। रामदेव शुक्ल 'आनंदघन' पुस्तक में घनानंद की भक्ति के बारे में लिखते हैं, ''रीतिकाल के अन्य कवियों की तरह शृंगार और भक्ति की खिचड़ी पकाने के स्थान पर आनंदघन ने अपना प्रेम-जीवन और भक्ति जीवन अलग-अलग रखकर दोनों को पूर्णता तक पहुँचाया है। इसी प्रकार प्रेम और भक्ति संबंधी उनकी रचनाओं के संसार भी अलग-अलग हैं। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि अपने शृंगार-भाव को आनंदघन किसी हीनता भाव या पाप बोध से नहीं जोड़ते। वे प्रकृत मनुष्य के स्तर पर उत्पन्न नैसर्गिक प्रेम को भी इश्वरीय, अलौकिक और दिव्य प्रेम का ही अंश मानते हैं।''

घनानंद की कविता का केंद्र सुजान है। अंतिम समय में वह भक्तिपरक रचनाओं में राधा-कृष्ण को आधार बनाते हैं। आलोचकों का कहना है कि घनानंद विधिवत भक्ति संप्रदाय में दीक्षित हुए। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार वह निंबार्क संप्रदाय में दीक्षित हुए तो लाला

भगवानदीन का कहना है कि घनानंद सखी संप्रदाय में दीक्षित हुए। यों घनानंद भले ही किसी संप्रदाय में दीक्षित हुए हों लेकिन उनकी कविता में व्यक्त उनकी स्वच्छंद और अलमस्त प्रवृत्ति इसके विपरीत लगती है। कहा जा सकता है कि संप्रदाय में दीक्षित होते हुए भी वह अपनी कविता में उसका अनुसरण नहीं करते हैं वह उनकी भक्ति में अनुस्यूत है। सुजान द्वारा उपेक्षित किए जाने पर वह लौकिक से अलौकिक प्रेम की ओर उन्मुख हुए। राधा-कृष्ण जिस दिव्य प्रेम के समुद्र में प्रेम का अवगाहन करते हैं, यह भक्ति का वह प्रेम है जिसमें एकनिष्ठता हो, उदारता हो, आत्मसमर्पण हो। ऐसा ही प्रेम है घनानंद का भी हैः

प्रेम को महोदधि अपार हेरि है, बिचार
बापुरो हहरि वार ही तें फिरि आयौ है
ताही एक रस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
नेहि हरि राधा जिन्हैं देखे सरसायौ है।
ताकि कोऊ तरल तरंग-संग छुट्यौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमंगि उफनायौ है।
सोई घनआनंद सुजान लगि हेत होत,
ऐसें मथि मन पै सरूप ठहरायौ है।

वैसे तो घनानंद की संपूर्ण रचनाओं में भक्तिपरक रस व्याप्त है लेकिन कुछ रचनाएँ भक्ति की दृष्टि से प्रमुख हैं इनमें 'प्रेम-पत्रिका' और 'पदावली' प्रमुख है। 'प्रेम पत्रिका' पढ़ते ही सूर के 'भ्रमरगीत' का स्मरण हो आता है। सूर के 'भ्रमरगीत' में गोपियाँ कृष्ण के जाने के बाद कृष्ण की छवि, स्मृतियों से प्रेम करती हैं; वही हाल घनानंद का है। सुजान द्वारा उनके प्यार

को ठुकरा दिए जाने के बाद वह सुजान की स्मृति को प्यार करते हैं। अब वह ब्रजमंडल की भूमि और प्रकृति से प्रेम की अभिलाषा रखते हैं। 'पदावली' में उन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम, लीला और जीवन की मोहक क्रीड़ाओं को चित्रित किया है। राधा-कृष्ण के प्रति उनकी प्रेम भक्ति विरल है।

'वियोगबेलि' और 'इश्कलता' जैसी उनकी रचनाओं में सूफी भक्ति भाव का प्रभाव है। वैसे आत्मा पुरुष परमात्मा स्त्री का भाव तो घनानंद की कविता में मौजूद है। लेकिन घनानंद की भक्ति और प्रेम में इस सूफी भाव का अतिक्रमण भी है। वह 'इष्कमजाजी' से 'इष्कहकीकी' तक ही नहीं पहुँचते, उसके पार भी जाते हैं। वह लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम से अलग नहीं करते, बल्कि उनकी भक्ति में लौकिक-अलौकिक प्रेम और भक्ति की आवाजाही होती रहती है। वे स्वच्छंद प्रेम के गायक हैं सो उनकी भक्ति में भी स्वच्छंद भक्ति का भाव है। स्वच्छंद प्रेमी और स्वच्छंद भक्ति के राही घनानंद जीवन भर बनी-बनाई लीक को तोड़ते रहे और नई राह सृजित करते रहे तभी तो वह कहते हैं, ''लोग हैं लागि कबित्त बनावत मोंहि तो मेरे कबित्त बनावत''।

10.5 घनानंद की कविता का शिल्प पक्ष : काव्य भाषा, छंद, अलंकार

घनानंद के समय ब्रजभाषा का विकास हो चुका था। घनानंद की काव्यभाषा में छंद और अलंकारों का प्रयोग भाषा की सर्जनात्मक शक्ति बढ़ाने वाला है, वह अलंकारो से चमत्कार नहीं पैदा करना चाहते उसको समृद्ध करना चाहते हैं। भाषा की संप्रेषणीयता पर बल देने वाले घनानंद ब्रजभाषा की मिठास, वक्रता और उसकी भाव व्यंजकता का भरपूर और सफल प्रयोग करते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल घनानंद के काव्यभाषा की सामर्थ्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं, ''इनकी सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई

कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। विप्रलंभ श्रृंगार ही अधिकतर इन्होंने लिखा है। ये वियोग श्रृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। 'प्रेम के पीर' को लेकर ही इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीरपथिक तथा जबांदनी का दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।'' अतः इनके संबंध में निम्नलिखित पंक्ति बहुत ही संगत है :

नेही महा, ब्रजभाषा प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद को जानै।

योग-वियोग की रीति में कोविद, भावना भेद स्वरूप को ठानै।।

चाह के रंग में भीज्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सांति न मानै

भाषा प्रवीन, सुछंद सदा रहै सो घन जू के कबित्त बखानै।।

घनानंद के समय जो ब्रजभाषा उन्हें प्राप्त हुई उसका विकास उन्होंने किया, उसमें कुछ जोड़ा, उसे समृद्ध किया। उदाहरणस्वरूप तद्भव देशज शब्द– बिसास, आंकू, सल, पैधक, बर न्यार; फारसी शब्दों में– निशान, मार, जान और हुस्न; संस्कृत शब्दों में– मीन, विध, नीर, लोचन जैसे उल्लेखनीय शब्दों का प्रयोग भाषा संबंधी उनकी प्रयोगधर्मिता का परिचय देते हैं।

घनानंद की काव्यभाषा की यह विशेषता है कि उसमें अभिधा की जगह लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ की अधिकता है। वैसे भी व्यंजना और लक्षणा से भरी भाषा को उत्तम कविता कहा जाता है। घनानंद की कविता में व्यंजना से अधिक लक्षणा का प्रयोग किया गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने इतिहास ग्रंथ में घनानंद के काव्य में लक्षणा के प्रयोग की प्रशंसा करते हुए

लिखते भी हैं, ''लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिंदी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर बढ़ाया। एक घनानंद ही ऐसे कवि हुए जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य की जो हवा इनमें दिखाई पड़ी खेद है कि फिर वह पौने दो सौ वर्ष पीछे जाकर आधुनिक काल के उत्तरार्ध में अर्थात वर्तमान काल की नूतन काव्यधारा में ही, 'अभिव्यंजनावाद' के प्रभाव से कुछ विदेशी रंग लिए हुए प्रगट हुई।'' घनानंद का प्रयोग वैचित्र्य दिखाने के लिए कुछ पक्तियाँ नीचे उद्धृत की जा रही हैं :

(क) अरसानि गही वह बनि, सरसानि सो आनि निहोरत है।

मुहावरों और लाक्षणिकता के सुंदर प्रयोग से वह कविता के भाव संप्रेषण को सामर्थ्यवान बनाते हैं। उनके द्वारा रचे गये प्रसिद्ध पद की ये काव्य पंक्तियाँ इसी की गवाही दे रही हैं :

तुम कौन धौ पाटी पढ़े हो कहो, मन लेहु के देहुं छटांक नहीं।।

घनानंद कविता में छंद, अलंकार का विषय के अनुरूप प्रयोग करते हैं। वह अच्छे संगीतकार थे इस कारण उनकी कविता में छंदों और अलंकारों का सटीक प्रयोग किया गया है। घनानंद के काव्य में वैसे तो कवित्त, सवैय्या, त्रिलोकी, नाटक, निसानी, शोभन और त्रिभंगी का प्रयोग मिलता है लेकिन उनके प्रिय छंदो में कवित्त और सवैय्या हैं।

कविता के सौंदर्य को बढ़ाने के लिए उन्होंने शब्दालंकारों और अर्थालंकारों दोनों का प्रयोग किया है, लेकिन विरोधमूलक और साम्यमूलक अलंकारों में उनका मन अधिक रमा है। उपमा, अनुप्रास, असंगति और विरोधाभास उनके प्रिय अलंकार हैं जिनका प्रयोग बहुतायत में उनके काव्य में किया गया है।

बोध पश्न

निम्नलिखित पश्नों का उत्तर पाँच-पाँच पंक्तियों में दीजिए।

5. घनानंद के काव्य में व्यक्त भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

6. घनानंद की काव्य-भाषा की विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

7. घनानंद अपनी कविता में किन-किन अलंकारों और छंदों का प्रयोग करते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

8. निम्नलिखित कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति दिए गए विकल्पों में से कीजिए।

(क) घनानंद की काव्यभाषा ..... है। (अवधी, ब्रज, बघेली)

(ख) घनानंद 'प्रेम के .....' के कवि हैं। (पीर, उत्साह, संयोग)

(ग) घनानंद का प्रिय छंद कवित्त और ..... है। (त्रिभंगी, सवैया, त्रिलोकी)

(घ) घनानंद की कविता में शृंगार के ..... का आधिक्य है। (संयोग, करूण, वियोग)

10.6 घनानंद की कविता का वाचन और आस्वादन

- **अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।...**

संदर्भ

प्रस्तुत कविता घनानंद के द्वारा रचित है।

व्याख्या

'प्रेम के पीर' के गायक घनानंद अपने इस पद में प्रेम मार्ग की निष्छलता और कठिनाई का वर्णन करते हैं। यहाँ प्रिया अपने प्रेमी को बता रही है कि प्रेम का मार्ग सरल और सहज है उसमें निष्कपटता आवष्यक है, कपट करने वाले इस मार्ग पर नहीं चल सकते।

प्रिया अपने प्रिय को संबोधित कर कह रही है कि हे प्रिय सुनो प्रेम का स्नेह मार्ग का मार्ग सीधा-सरल है उसमें किसी सयानेपन अथवा सांसारिकता या दिखावेपन की आवष्यकता नहीं है। इस मार्ग पर वही प्रेमी जन चल सकते हैं जिन्होंने अपने अहंकार को, दंभ को, त्याग दिया है। जो कपटी है, शंकायुक्त है अर्थात निःशंक नहीं है वह इस सीधे-सरल प्रेम मार्ग पर चलते झिझकते हैं। कारण ऐसे जन टेढ़े मार्ग पर चलने के आदी होते हैं सो सरल मार्ग पर चल नहीं सकते। प्रिया अपने प्रेमी को संबोधित करते हुए कह रही है कि हे सघन, गहरा आनंद देने वाले सुख देने वाले प्रिय, तुम सब कुछ जानते तो हो लेकिन तुम्हारी कथनी-करनी में भेद है। इसलिए हे प्यारे प्रिय सुजान सुनो कि इस धीर प्रेम के मार्ग में केवल एक अंक, एक ही रास्ता है, एक ही निष्चय है, दूसरा अंक या दूसरा मार्ग नहीं है। यहाँ कोई चालाकी चल नहीं सकती। घनानंद कहते हैं कि वह मेरा प्रेमी बहुत ही चतुर है जो सबका

मन ले लेता है पर अपना कुछ भी नहीं देता। क्या आप सिर्फ लेना जानते हैं देना नहीं। हे लला अथवा प्रेम क्रीड़ा के प्रेमी तुमने कौन सी पाटी, या चतुरता का पाठ पढ़ लिया है कि दूसरे का सर्वस्व लेने के बाद अपना रंच मात्र भी देना नहीं चाहते। आपने मन तो ले लिया पर छटाँक भी नहीं दिया, यह सौदा तो ठीक नहीं। आपको तो हमने मन से हृदय से प्यार किया और आप हैं कि आप अपनी एक छटा या शोभा की एक झलक भी नहीं देना चाहते। यह तो प्रेम न हुआ।

विशेषः

(i) प्रेम मार्ग का विरल-विलक्षण चित्रण।

(ii) प्रेम में निष्कपटता का आग्रह।

(iii) 'परिवृत्ति' अलंकार। परिवृत्ति अर्थात लेन-देन।

(iv) अंतिम पंक्ति मन' और 'छटांक' में ष्लेष है। 'मन' अर्थात चालीस सेर और मन (चित्त), 'छटाँक अर्थात सेर का सोलहवाँ भाग और छटाँक में छटा का अंक या झलक की भी व्याप्ति है।

(v) भाषा माधुर्य और वक्रता से भरी ब्रजभाषा।

- **हीन भएं जलमीन अधीन, कहा कहु मो अकुलानि समानै।...**

संदर्भ

घनानंद रचनावली अंतर्गत 'सुजानहित' के इस छंद में घनानंद या आनंद घन विरही की भाव दशा का सुंदर चित्रण करते हैं। इस प्रकार के छंदों में आश्रय रूप में स्त्री या पुरूष अथवा प्रेमी या प्रेमिका को मान लिया जाय तो भी अर्थबाधित नहीं होता।

व्याख्या

विरही प्रेमी अपने विरह से जलते हुए हृदय की तुलना मछली या मीन की तड़प से करता हुआ कहता है कि लोक में, संसार में मीन को इसलिए आदर्श प्रेमी माना जाता है क्योंकि जल से बाहर निकाले जाने पर वह तड़पकर अपनी जान दे देता है, लेकिन कवि का विरहाकुल प्रेमी मन लोक की इस मान्यता को स्वीकार नहीं करता और कहता है कि प्रेम के विरह से दग्ध होकर अपनी जान दे देना मीन के प्रेम की प्रगाढ़ता को नहीं प्रदर्शित करता बल्कि उसके छिछलेपन को दिखाता है। प्राण देकर प्रेम से मुक्ति पा लेने वाला हीन प्रेमी है। जो प्रेम में विरह को सहते हुए तड़पता है, वही असली प्रेमी है, इसकी तुलना जान देने वाले प्रेमी से कहाँ की जा सकती है। जल के वियोग में अपने प्राण त्याग देने वाला मीन अपने प्रेमी (जल) पर निष्ठुर होने का कलंक लगाता है जो उचित नहीं है। जल को नीरस नेही बना देता है। विरह की हर दशा को सहन कर सकने वाला प्रेमी कहता है कि मीन जल से अलग होकर इसलिए प्राण देता है क्योंकि वह कायर है। उसके भीतर प्रणय से उपजे दुख और विरह को सहने की शक्ति नहीं है। प्रेम में आशा, विष्वास और साहस की आवष्यकता होती है जो जड़मति मीन के पास नहीं है, तभी तो वह विरह में अपनी जान तो देता ही है साथ ही प्रेमी जल के ऊपर नीरस और कठोर होने का आरोप भी लगा देता है। उसे कलंकित कर देता है। अपने प्राण का त्याग कर मीन यह प्रमाणित कर देता है कि उसे प्रीति की रीति नहीं पता है। वह खुद तो मरता ही है प्रेमी को भी कलंकित कर देता है। वियोग से घबराकर, हारकर अपने प्राण त्याग देना यह तो प्रीति की रीति न हुई। यह तो प्रीति मार्ग की अनभिज्ञता है। यहाँ पर प्रेमी अपनी विरह व्यथा की गंभीरता और उसको निरंतर सहते रहने की बात करता है और कहता है कि जो संसारी लोग मीन को ही अपने

प्रेम का आदर्श मानते हैं वह विरह की पीड़ा का अनुमान कैसे कर सकते हैं? यह स्वानुभूत का मामला है। विरह की इस असह्य किंतु दिव्य दुख की अनुभूति करने वाला प्रेमी कहता है कि मेरे मन की अंतरदशा वह प्रेमी ही समझ सकता है जो मेरे प्राणों का प्राण है, जीवन का जीवन है। प्रिय तो सब कुछ जानता है, इसलिए मेरी पीड़ा को भी जान जाएगा।

विशेष

(i) प्रेम के लोक-प्रसिद्ध आदर्श मीन के प्रेम और उसके प्राण-त्याग को घनानंद क्षुद्र और कमजोर घोषित करते हैं और प्रेम में विरह को सहते हुए जीवित रहने को प्रेम की उदात्त अनुभूति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। प्रेम का आदर्श अधिक संसारी और उदात्त है।

(ii) नीरस नेही में सभंग ष्लेष है।

- **घन आनंद प्यारे सुजान सुनौ, जिहि भांतिन हौं दुख-सूल सहौं।...**

व्याख्या

प्रिया का प्रिय के विरह में सहज जिज्ञासा का भाव है। प्रिय इतना निष्ठुर है, कि उसने अपने आने का न तो निष्चित समय तय किया है और न ही भविष्य में उसके आने की संभावना ही दीख रही है। फिर भी प्रेम का भाव इतना गहरा है कि प्रिया अपने उस निष्ठुर प्रेमी का निरंतर बाट जोह रही है। ऐसा देख आम जन के मन में यही विचार आता है कि इस तरह कोई किसी से कैसे प्रेम कर सकता? अब प्रेम के इस आंतरिक भाव को प्रिया उन लोगों को कैसे बताए? अपने प्रेमी को उलाहना देते हुए कहती है कि यदि इस प्रेम के क्रिया-कलाप से प्रेमी को लगता है कि वह इस तरह अपने प्रेमी को बुलाना चाहती है तो वह निष्चित हो जाए कि आपको यहाँ (प्रेमिका के पास) आने की आवष्यकता नहीं है। यहाँ प्रेम का वह भाव

है जिसमें प्रेमिका, प्रेमी को इश्वर का दर्जा देकर उसके भक्ति में लीन हो गई है, सो ऐसे में उसके भौतिक उपस्थिति की आवष्यकता नहीं, वह तो प्रमिका के मन-मंदिर में बस गया है।

- **उर-भौन में मौन को घूँघट कै, दुरि बैठी विराजति बात बनी।...**

व्याख्या

इस छंद में मौन के अर्थ की अभिव्यंजना है। मौन की महिमा को कवि सांग रूपक द्वारा चित्रित करता है। बात रूपी वधू हृदय के मनोरम भवन में मौन का घूँघट किए उपस्थित है, वह प्रेम की अनुभूति, भक्ति और रहस्य की अनुभूति या काव्य की मार्मिक अनुभूति कुछ भी हो सकती है। अनुभूति चाहे कविता की हो अथवा प्रेम की वह वास्तविकता में मौन में ही विराजती है, हृदय की गहराई में बाहर तो उसका आभास होता है। तभी तो घनानंद ने प्रेम को 'मौन मधि पुकार' कहा है।

- **मीत सुजान अनीत करौ जिन, हाहा न हूजियै मोहि अमोहि।...**

विरहिणी प्रिय को उलाहना दे रही है। प्रिय पहले मोहित करता है, फिर निर्मोही बनकर विष्वासघात करता है। जीवन का संचार जगाकर, आनंद के बादल बनकर छा जाते हो और फिर बिना जल के प्यासे रखकर तड़प पैदा कर देते हो।

- **तब तौ छवि पीवत जीवत है, अब सोचन लोचन, जात जरे।...**

व्याख्या

विरह की असहनीय पीड़ा झेलते हुए विरहिणी प्रिया संयोग के क्षणों को याद करती है और अनुभूति करती है कि संयोग के क्षणों का पल जितना प्रगाढ़ होता है वियोग का क्षण उतना ही प्रतिकूल और असहनीय हो जाता है। संयोग में प्रेम करते समय प्रेमी युगल को हार पहाड़

की तरह लगते थे अब वियोग का पल पहाड़ जैसा हो गया है जिसको पार कर पाना मुष्किल हो गया है।

10.7 सारांश

- घनानंद रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। वह स्वानुभूति प्रेम के स्वच्छंद भाव के कवि हैं।
- घनानंद का श्रृंगार और प्रेमवर्णन रीति की बँधी-बँधाई परिपाटी से अलग जीवन से निःसृत संवदेना है।
- घनानंद के प्रेम की प्रेरणा 'सुजान' हैं।
- इनकी कविता में संयोग का अवसर कम है, वियोग की, विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति की अधिकता है।
- स्वानुभूति प्रेम की इस गहन प्रेम अभिव्यक्ति को लक्षित करके आचार्य शुक्ल ने घनानंद के प्रेम को 'स्वच्छंद प्रेम' कहा है।
- सुजान से अलग होकर घनानंद के विरह की कविता में अलौकिक तत्व समाहित हो जाने से भक्ति की संवेदना की व्याप्ति है।
- घनानंद के यहाँ भक्ति तो इसी विरह का सोपान है, जहाँ लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की यात्रा है।
- घनानंद पूर्णतया प्रेम के स्वचछंद भाव के कवि हैं। उनके इस प्रेम-दृष्टि में सूफी कविता का प्रभाव है, ब्रजभाषा की काव्य परंपरा का भी प्रभाव है लेकिन घनानंद की कविता का

केंद्र उनकी स्वानुभूति से जुड़ा है, जो बेहद मौलिक है, निजी है, प्रेम में विरह की विरल अनुभूति है।

- ब्रजभाषा का विकसित और निखरा रूप घनानंद की कविता की विशेषता है।
- कवित्त और सवैय्या उनके प्रिय छंद हैं।
- शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रयोग घनानंद की कविता की शान हैं।
- घनानंद को हिंदी काव्य-संस्कृति के स्वच्छंद भाव का प्रथम कवि कहा जाय तो गलत न होगा।

10.8 शब्दावली

सूधो – सीधा, सरल,

बाँक – सुंदर, तिरछा,

नीके – सुंदर, अच्छा,

ललित – मनोहर

सयानप – यानापन, प्रौढ़ता

आपनपौ – अपनापन।

रसीली – रस भरी, सुखदायी

10.9 उपयोगी पुस्तकें

- *घनानंद का काव्य* – रामदेव शुक्ल; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- *अनंदघन*– रामदेव शुक्ल; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

- *घनानंद और स्वच्छंद काव्य धारा* – मनोहरलाल गौड़; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
- *हिंदी साहित्य का इतिहास* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल; नागरी प्रचारिणी सभा
- *हिंदी साहित्य का अतीत भाग : 2* – विष्वनाथ प्रसाद मिश्र; वाणी प्रकाशन, दिल्ली

10.10 बोध पश्नों के उत्तर

1. देखिए – भाग 10.2

2. देखिए – भाग 10.3

3. देखिए – भाग 10.3

4. (क) ×

(ख) ×

(ग) ✓

(घ) ✓

5. देखिए – भाग 10.4

6. देखिए – भाग 10.5

7. देखिए – भाग 10.5

8. (क) ब्रज

(ख) पीर

(ग) सवैया

(घ) वियोग

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 11 रसखान का काव्य

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 रसखान का जीवन वृत्त

11.3 रसखान की रचनाएँ

11.4 रसखान में कृष्ण-प्रेम और भक्ति

11.5 रसखान का प्रेमदर्शन

11.6 रसखान की भाषा और काव्य सौंदर्य

11.7 रसखान के काव्य का वाचन और आस्वादन

11.8 सारांश

11.9 शब्दावली

11.10 उपयोगी पुस्तकें

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

यदि हम हिंदी कविता के स्रोतों की शिनाख्त करें, तब उसमें शामिल अनेक अंतरवर्ती धाराओं से हमारा परिचय होता है। दरअसल यह धारा भारतीय लोकतंत्र के विकसित होने और विशिष्ट चेतना के निर्माण की भी कहानी है। अब्दुर्र रहमान, अमीर खुसरो, मलिक मुहम्मद

जायसी जैसे रचनाकारों का हिंदी कविता के इतिहास में प्रमुख स्वरों के रूप में शामिल होना इस बात का प्रमाण है कि हिंदी कविता अपने आरंभिक दौर से ही स्वभावतः एक ऐसे वृहत वृत्त का निर्माण कर रही थी, जिसमें विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियों के लिए स्थान हो। यह केवल उदारता का संकल्प ही नहीं है, बल्कि अनेक तरह की हदबंदियों से असहमत होने का विवेक भी है। इस इकाई में कृष्णभक्ति धारा के एक प्रमुख स्वर रसखान की कविताओं की विभिन्न विशिष्टताओं से आप परचित होंगे। इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- रसखान की जीवन यात्रा से परिचित हो सकेंगे;
- उनके रचनात्मक अवदान को जान सकेंगे;
- उनके कृष्ण प्रेम और भक्ति की विशिष्टताओं को समझ पाएँगे;
- रसखान के प्रेमदर्शन के विभिन्न पक्षों को समझ पाएँगे;
- रसखान की कविता के शिल्प पक्ष को जान सकेंगे; तथा
- रसखान की चुनिंदा कविताओं के साक्ष्य पर अपनी समझ को और भी विकसित कर पाएँगे।

11.1 प्रस्तावना

भक्तिकाल के प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि सैयद इब्राहिम रसखान की लोकप्रियता के अनेक किस्से मशहूर रहे हैं। कुछ बातें बार-बार उद्धृत की जाती हैं। मसलन उनकी कविताएँ तुलसीदास और सूरदास की ही तरह लोगों की जुबान पर चढ़ गई थीं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा है कि इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिंदू वारिये! आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रसखान की लोकप्रियता के बेहद रोचक पहलू की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित किया है, उन्होंने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में दर्ज किया, ''प्रेम के ऐसे सुंदर उद्‌गार इनके सवैयों में निकले कि जनसाधारण प्रेम या श्रृंगार संबंधी कवित्त सवैयों को ही 'रसखान' कहने लगे, जैसे कोई

रसखान सुनाओ।'' ऐसे प्रसिद्ध कवि की लोकप्रियता का जितना विस्तार अपने जीवन काल में हुआ उतनी ही व्याप्ति हिंदी कविता की विरासत में भी हुई। कृष्णभक्ति शाखा और मध्यकालीन प्रेम की कोई भी व्याख्या इनकी चर्चा के बिना जैसे अधूरी है। रसखान की कविता में केवल अनन्य प्रेम का मोहक रूप ही वर्णित नहीं हुआ, लोक के विविध रंग भी अपने विशिष्ट अंदाज़ में प्रकट हुए हैं। उनकी कविताएँ हमें प्रेम की अनंत गहराइयों के साथ ही वृंदावन की कुंज-गलियों, पहाड़ों पठारों, वन-उपवन, पशु-पक्षी, व्रत-त्योहार आदि का सहचर बनने का सुख भी देती हैं। रसखान की ब्रजभाषा लोकरंग में पगी है, जिसमें संवाद की अद्‌भुत ललक है। वे अपने समय में प्रचलित काव्यरूपों का सधा और सटीक प्रयोग करते हैं। उनकी कविता हमें बेखुदी के उस संसार में ले जाती है, जहाँ इश्क की खुमारी में फना होने का जुनून मुखर है। यह बेखुदी संक्रामक है, यहाँ लुभाने वाले खुद लुभ जाते हैं, कान्हा गायों को भूल जाता है और राधा को गागर उठाने की सुधि नहीं रहती :

आजु हौं निहार्‌यो बीर कलिंदी तीर,

दोउन को दोउन सों मुरि मुसकाइबो।

दोऊ परै पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैयाँ इन्हैं

भूलि गईं गैयाँ उन्हैं गागर उठाइबो।।

प्रेम का यह स्वरूप अपूर्व और उल्लेखनीय है। आगे रसखान के जीवन और काव्य के विभिन्न पक्षों की जानकारी दी जा रही है।

11.2 रसखान का जीवन वृत्त

रसखान भक्तिकाल के ऐसे कवि के रूप में ख्यात हैं, जिनके जीवन के बारे में परस्पर विरोधी धारणाएँ मौजूद हैं। उनके जीवन के बहिर्साक्ष्य और अंतर्साक्ष्य दोनों उपलब्ध हैं। बहिर्साक्ष्य यानी उनके दौर की रचनाओं में उनके बारे में जो प्रमाण उपलब्ध हैं तथा अंतर्साक्ष्य यानी रसखान की रचनाओं से क्या राय सामने आती है। आवश्यकता इस बात की है कि दोनों तरह के साक्ष्यों को आधार मानकर तर्कपूर्ण निष्पत्तियों तक पहुँचने का प्रयास किया जाय।

रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। उनके जीवन की अनेक झलकियाँ उनकी रचनाओं में उपलब्ध है। जैसे 'प्रेमवाटिका' में उनकी उक्ति है :

देखि ग़दर हित साहबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा-बंश की, ठसक छोरि रसखान।।
प्रेमनिकेतन श्रीबनहिं, आइ गोबर्धन-धाम।
लह्यो सरन चितचाहि के, जुगलसरूप ललाम।।

ऊपर उल्लिखित पंक्तियों में 'ग़दर' और 'दिल्ली के श्मशान बन जाने' के समय का विशेषज्ञों ने निर्धारण किया है। अनुमान के मुताबिक़ यह वर्ष 1555 ई. है। इसी वर्ष मुगल बादशाह हुमायूँ ने दिल्ली के सूरवंशीय पठान शासकों से अपना खोया हुआ शासनाधिकार फिर से प्राप्त किया था। इस ग़दर के दौरान भारी रक्तपात हुआ था। इस ग़दर का असर रसखान पर हुआ और वे विरक्त हो गए। रसखान ने जिस बादशाह वंश की ठसक का ज़िक्र किया है, वह शेरशाह सूरी का है। सूरी का उदय 1528 ई. में हुआ था, और इस वंश का अंत इब्राहिम खान और अहमद खान के पारस्परिक कलह के चलते 1555 ई. में हो गया। इस

ग़दर के समय रसखान की उम्र यदि बीस-बाईस साल मान ली जाय तो उनके जन्म का वर्ष 1533 ई. माना जा सकता है। एक समय यह धारणा बलवती थी कि रसखान पिहानी के सैयद इब्राहिम का ही उपनाम है। बाद के शोधों ने इस पर पुनर्विचार का अवसर उपलब्ध कराया। 'प्रेमवाटिका' के जिस पद का ऊपर उल्लेख किया गया है, उसके साक्ष्य पर यह कहना सही है कि जिस तरह उन्होंने दिल्ली छोड़कर गोवर्धन जाने का उल्लेख किया है उसके मुताबिक़ उनके जन्म स्थान को दिल्ली मानना चाहिए।

ऐसा मशहूर है कि वे दिल्ली निवासी एक साहूकार के बेटे पर आसक्त हो गए थे। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। इस आख्यान के अनुसार रसखान ने एक बार दो आदमियों को यह बतियाते हुए सुना कि ईश्वर में ऐसे ध्यान लगाना चाहिए जैसी रसखान की बनिए के बेटे से प्रीत है। एक दूसरी कहानी भी मशहूर है, जिसके मुताबिक़ उनकी प्रेमिका बड़ी मानिनी थी और अक्सर उनका तिरस्कार करती रहती थी। एक दिन जब वे 'श्रीमद्भागवत' का फारसी अनुवाद पढ़ रहे थे तब उसमें गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम देखकर उनके मन में आया क्यों न उन्हीं कृष्ण पर लौ लगाई जाय जिन पर इतनी गोपियाँ उत्सर्ग हो रही हैं। फिर वे अपनी तलाश लिए वृंदावन पहुँच गए। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के मुताबिक़ उनकी आसक्ति वैष्णव भक्तों के प्रोत्साहन से बनिए के बेटे से कृष्णभक्ति में रूपांतरित हो गई। वैष्णवों ने इन्हें कृष्ण-चित्र दी थी, जिन्हें लेकर वे दिल्ली से ब्रज प्रदेश पहुँचे थे। कृष्ण को देखने की चाह लिए वे मंदिर-मंदिर भटकते रहे। अंततः गोविंद-कुंड में श्रीनाथ जी के मंदिर में भक्तवत्सल भगवान कृष्ण ने उन्हें दर्शन दिए। कथा के अनुसार, फिर स्वामी विट्ठलनाथ ने रसखान को मंदिर के अंदर बुलाया। रसखान के जीवन में भारी बदलाव आया और वे गोपी भाव की भक्ति में निष्णात हो गए। सत्यदेव मिश्र

ने लिखा है, ''वस्तुतः उक्त वार्ता में वर्णित घटना-चक्र संबंधी कुछ संकेत रसखान की रचनाओं में भी मिलते हैं – यथा, 'प्रेम-वाटिका' में छवि दर्शन का उल्लेख तथा 'सुजान-रसखान' का लीला वर्णन।'' उन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथ का शिष्यत्व ग्रहण किया था।

'नव भक्तमाल' के रचनाकार श्री राधाचरण गोस्वामी और 'उत्तरार्ध भक्तमाल' के रचयिता भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी रसखान का उल्लेख किया है। प्रसंगवश भारतेंदु का यह कहना रसखान की प्रसिद्धि का बयान करता है कि इन मुसलमान भक्त कवियों के ऊपर करोड़ों हिंदुओं को न्योछावर किया जा सकता है। शिवसिह सेंगर ने रसखान को सैयद वंश का माना और निवास स्थान पिहानी ठहराया। मिश्र बंधुओं और आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रसखान को दिल्ली के शाही वंश का पठान सरदार माना और विट्ठलनाथ का पट्ट शिष्य स्वीकार किया। मिश्र बंधु तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता को ही सर्वाधिक स्वीकृति मिली।

रसखान की विद्वता और लोकप्रियता का आलम इससे भी आंका जा सकता है कि वेणीमाधवदास द्वारा 1755-56 ई. में रचित 'मूलगुसाईंचरित' में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा स्वरचित 'रामचरितमानस' की कथा सर्वप्रथम रसखान को सुनाने का ज़िक्र है :

जमुना तट पै त्रय वत्सर लौं, रसखानहिं जाइ सुनावत भौ।

रसखान-काव्य के सभी अध्येता इस बात पर सहमति व्यक्त करते हैं कि उनकी अंतिम रचना 'प्रेमवाटिका' (1614 ई.) है। कुछ ही साल बाद 1618 ई. में उनका देहावसान हो गया।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रष्नों का उत्तर एक-एक पंक्ति में दीजिए।

(क) रसखान का पूरा नाम क्या था?

.....

(ख) किस आलोचक ने रसखान पर करोड़ों हिंदुओं के न्योछावर करने की बात की?

.....

2. रसखान के आविर्भाव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बताइए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

3. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-एक पंक्ति में दीजिए।

(क) 'रामचरितमानस' रसखान को किसने सुनाया था?

.....

(ख) रसखान के दीक्षा गुरु का नाम बताइए।

.....

4. रसखान के प्रेम से जुड़ी कहानी क्या है? (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

11.3 रसखान की रचनाएँ

रसखान रचित तीन रचनाओं को सभी प्रामाणिक मानते हैं– 'सुजान-रसखान', 'प्रेम-वाटिका' और 'दानलीला'। विद्यानिवास मिश्र के अनुसार, ''नागरी प्रचारिणी सभा के संग्रहालय में उक्त रचनाओं के अतिरिक्त 'रसखान दोहावली' और 'रसखान कवितावली' नामक दो रचनाएँ रसखान के नाम से मिलती हैं। 'रसखान दोहावली' की अरबी-फारसी शब्दों से बोझिल शैली रसखान की नहीं हो सकती। ... 'रसखान कवितावली' में रसखान का कोई पद संगृहीत नहीं है।''

असल में, रसखान की कविताओं की छानबीन लंबे अरसे से होती रही है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय इस खोजबीन में तेज़ी आई। रसखान की रचनाओं का प्रकाशन सबसे पहले किशोरीलाल गोस्वामी ने किया। तब से अब तक रसखान की अनेक रचनाओं का प्रकाशन हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा संकलित 'सुजान-रसखान', 'प्रेम वाटिका'; 'रसखान

पदावली'– संकलन : प्रभुदत्त ब्रह्मचारी; 'रसखान रत्नावली' – संकलन : दुर्गाशंकर मिश्र; 'रसखान और घनानंद' – संकलन : बाबू अमीर सिंह; 'रसखानि ग्रंथावली' – संपादन : आचार्य विष्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि का इस संदर्भ में उल्लेख किया जा सकता है। ज़्यादातर विद्वानों ने अपने-अपने संकलनों में अपने पहले के संकलनों से एक-दो अधिक पदों को देने का प्रयास किया है। आचार्य विष्वनाथ प्रसाद मिश्र के संकलन को सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। उनके संकलन को इसलिए महत्वपूर्ण माना जाता है कि उन्होंने पहले के प्रकाशित संग्रहों की अपेक्षा अपने संग्रह में कवित्त, सवैयों, दोहों आदि की संख्या में बढ़ोत्तरी की। नागरी प्रचारिणी सभा की रिपोर्ट और विवरणों को ध्यान में रखकर उपलब्ध पांडुलिपियों का सहारा लेकर आचार्य विष्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'सुजान-रसखान' में दो सौ चौदह कवित्त-सवैये, 'प्रेम-वाटिका' में तिरपन दोहें तथा 'दानलीला' में ग्यारह पदों के साथ-ही-साथ प्रकीर्णक के अंतर्गत दो पद होली और सगुनौती के भी संकलित किए हैं। पं. विद्यानिवास मिश्र और सत्यदेव मिश्र के संपादन में भी 'रसखान रचनावली' का प्रकाशन किया गया, जिसमें रसखान के संपूर्ण काव्य को समाहित करने का प्रयास किया गया। आगे रसखान की तीन प्रमुख रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है।

सुजान-रसखान

'सुजान-रसखान' संबंधी सर्वाधिक पद विष्वनाथ प्रसाद मिश्र की 'रसखानि ग्रंथावली' मं शामिल है। इनसे पहले के संकलनों में पदों की संख्या बीस से एक सौ चौंतीस तक ही रही। मिश्र जी ने अपने अनथक प्रयास से दो सौ चौदह पदों का संकलन किया। इस ग्रंथ में कृष्ण के लीला-विलास को शामिल किया गया है। विभिन्न लीलाओं की रचना अलग-अलग समयों में

की गई है, लिहाजा उनमें किसी निश्चित तारतम्य को ढूँढ़ना संभव नहीं। इसमें शामिल काव्य के कथ्यों का उल्लेख करें तो हम इन भावदशाओं से संबंधित पद पाते हैं– प्रेम, भक्ति, बाल-लीला, गोचारण, चीरहरण, कुंज-विलास, पनघट-प्रसंग, वन लीला, गोरस लीला, वयःसंधि, सुकुमारता, राधा-रूप वर्णन, वंशीवादन, पूर्वराग, अभिलाषा, रूपमाधुरी, चेतावनी, उपदेश, प्रेमलीला, दधिदान, उपालंभ, सपत्नीभाव, मिलन ,वियोग, चौपड़, रिझवार, मानवती प्रिया, विदग्धा, सूरत, सुरतांत, होली, भ्रमर, मीत, हरिशंकरी, भक्ति-भावना, अलौकिकत्व, कृष्ण सौंदर्य, नटखट कृष्ण, कालिया-दमन, फाग-लीला, सखी-षिक्षा, उद्धव-उपदेष आदि। यह सूची इस तथ्य को प्रकट करती है कि रसखान लोक में प्रचलित विभिन्न कृष्ण प्रसंगों को अपनी कविता का उपजीव्य तो बना रहे थे, लेकिन सिलसिलेवार ढंग से प्रबंध योजना सुनिष्चित करना उनकी कविता का उद्देष्य नहीं था।

प्रेम-वाटिका

'प्रेम-वाटिका' तिरपन दोहों का संकलन है। इसमें कृष्ण चरित से संबद्ध विभिन्न प्रेम-प्रसंगों को आधार बनाया गया है।

दान-लीला

'दान-लीला' ग्यारह कवित्त-सवैयों का संकलन है। इस रचना का कलेवर लघु है। इसकी शैली संवादमूलक है। यह संवाद दो रूपों में मिलता है। विद्वानों का एक वर्ग इस रचना को अप्रामाणिक मानता है। अप्रामाणिक मानने के पीछे उनका तर्क है, ''रसखान की प्रवृत्ति सवैया-रचना की ओर अधिक रही है और इसमें कुल पाँच सवैया ही हैं। रसखान ने प्रायः अपने

सभी पदों में अपने नाम की छाप दी है। 'दान-लीला' के ग्यारह पदों में मात्र एक बार (पद सं. 2 में) उनका नाम आया है।''

रचना की प्रामाणिकता के बारे में फिलहाल यह मानना सही है कि 'दानलीला' का उल्लेख रसखान की रचना के रूप में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में विद्यमान है। यही नहीं, हिंदी की मध्यकालीन स्वच्छंद काव्यधारा के अन्यतम अनुसंघेता आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे रसखान की प्रामाणिक रचना मानकर अपने संग्रह 'रसखानि-ग्रंथावली' में समाविष्ट किया है।

उल्लिखित तीन रचनाओं को आधार मानकर विभिन्न रसखान-ग्रंथावलियों की रचना की गई है।

11.4 रसखान में कृष्ण-प्रेम और भक्ति

रसखान की कविता का प्रधान उपजीव्य कृष्ण-प्रेम और भक्ति ही है। उनके बारे में एक किस्सा मशहूर है कि वे दिल्ली से ब्रजभूमि आए। दिल्ली के युद्ध और रक्तपात से उनका मन उचाट हो गया और उनके जीवन में एक ही सच बचा – कृष्ण-प्रेम और भक्ति। जनश्रुति है कि इनकी कृष्णभक्ति में अतिशय रमणीयता देख इन्हें किसी ने चेतावनी दी कि 'तुम्हारी रियासत छिन जाएगी।' इस पर जो उन्होंने जवाब दिया, वह कृष्णभक्ति का बेहतरीन उदाहरण है। उन्होंने कहा,

'कहा करै रसखान को, कोऊ चुगुल लबार।

जो पै राखनहार है, माखन चाखनहार।।'

यानी राजसत्ता के ऊँच-नीच और झूठ-फरेब से रसखान को क्या लेना-देना। उनके राखनहार तो माखन के चाखनहार हैं। उन्होंने सांसारिक या पारलौकिक प्रेम पर ऐसी कृष्णभक्ति को तरजीह दी, जिसे पा लेने पर न बैकुंठ की चाह रह जाती है न बैकुंठनाथ की। रसखान कहते हैं :

जेहि पाए बैकुंठ अरु, हरिहूँ की नहि चाहि।

सोइ अलौकिक, सुद्ध, सुभ, सरस, सुप्रेम कहाहि ।।

रसखान की प्रेम और भक्ति के अनेक रंग हैं। उनके कृष्ण-प्रेम की व्याप्ति जिस ब्रज में है, उस ब्रज का जैसा चित्रण रसखान ने किया है, वैसा वर्णन शायद ही किसी और कृष्णभक्त कवि ने किया हो। मनुष्य का जन्म हो तो गोकुल में, पशु जन्म हो तो नंद की गाय के रूप में, पत्थर का जन्म हो तो गोवर्द्धन के पत्थर के रूप में जिसे कृष्ण ने इंद्र के कारण अपनी उँगली पर धारण कर लिया था, यदि पक्षी जन्म मिले तो यमुना के किनारे कदंब की डाल पर मेरा बसेरा हो। इस अद्‌भुत सवैये में कृष्ण के प्रति जिस असीम अनुराग का वर्णन है, उसकी रसखान यूँ अभिव्यक्ति करते हैं :

मानुस हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।

जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।।

पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्‌यो कर छत्र पुरंदर धारन।

जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन।।

इसी तरह रसखान अपने एक सवैये में तीनों लोक की संपदा को उस सम्पत्ति के सामने तुच्छ समझते हैं, जो ग्वाल-बाल के संग-साथ से बनी है, बकौल रसखान :

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।

आठहुँ सिद्धि नवो निधि को सुख नंद की गाइ चराइ बिसारौं।।

रसखानि कबौं इन आँखिन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।

कोटिक रौ कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं।।

अर्थात ग्वालों की लाठी और कंबल के लिए तीनों लोकों का राज भी त्यागना पड़े तो कवि उसके लिए तैयार है। नंद की गाय चराने का मौका मिल जाए तो आठों सिद्धि और नवों निधि के सुख वे भुला देंगे। अपनी आँखों से ब्रज के वन उपवन और तालाब को जीवन भर निहारते रहना चाहते हैं। यहाँ तक कि ब्रज की काँटेदार झाड़ियों के लिए वे सौ महलों को भी न्योछावर कर देंगे।

कृष्ण के लिए जिस बेखुदी का रसखान ज़िक्र करते हैं, उसके रंग-रूप हज़ार हैं, जिनमें प्रभु की प्रभुता के लिए नहीं, बल्कि संपूर्ण व्याप्ति के आत्मीय आख्यान हैं। लेकिन उसकी अपनी विशिष्टता है। इस कृष्ण-प्रेम की व्याप्ति पर विद्यानिवास मिश्र की नज़र यूँ जाती है, ''प्रेम श्रीकृष्ण का वह रूप है जो सबको छूता है। कभी छूकर तपाता है, कभी छूकर हर्षाता है। यह साक्षात श्री कृष्ण है। पर ऐसे अलग लगता है जैसे सूरज से धूप अलग लगती है। सूरज की सार्थकता है धूप होने में, श्रीकृष्ण की सार्थकता है प्यार होने में। ऐसे प्रेम को श्रीकृष्ण भी बड़प्पन देते हैं और क्या-क्या नहीं सुनते! कभी तो कोई कहता है – 'सब बेद्यत प्रानौ नंद के छौनो'। 'कभी छछिया भर छाछ पै नाच नचाता है', कभी कोई कहता है कि यह बाँसुरी नहीं बजाता, विष बगराता है :

दूध दुह्यो सीरो पर्यो तातो न जमायो कर्यो,

जामन दयो सो धर्‌यो धर्‌योई खटाइगो ।

आन हाथ आन पाइ सबही के तबहीं तें,

जबहीं तें रसखानि तानन सुनाइगो।।

ज्यौंहीं नर त्यौंहीं नारी तैसी ये तरुन बारी,

कहिए कहा री सब ब्रज बिललाइगो।

जानिए न आली यह छोहरा जसोमति को,

बाँसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो।।

इसके मारे सारा ब्रज व्याकुल है। ऐसी बाँसुरी बजाता है कि प्राण खींच लेता है। कभी इन्हें उलाहना मिलता है कि चोर है, बटमार है, बरजोरी करता है। कभी कोई कहता है ,'अरे हरि चेरी के चेरो भयो है', कुबरी दासी के दास हो गए हैं श्रीकृष्णा और कभी उस पर इतना प्यार आता है कि 'मेरे बनमाली को न काली तें छुड़ावही' मेरे बनमाली को कालिय नाग से कोई नहीं छुड़ाता।'' भारतीय कविता में जिन भारतीय तत्वों की बात की जाती है उसका केंद्रीय तत्व है समग्र और विशिष्ट भारतीय सौंदर्य दृष्टि। कहना न होगा रसखान की कविता इस भारतीय सौंदर्य दृष्टि का खूबसूरत आख्यान पेश करती है।

कृष्ण-प्रेम की बात तब तक अधूरी रहेगी, जब तक उसमें कृष्ण-जीवन के कतिपय प्रसंग शामिल न हों। आइए इसे और बेहतरीन ढंग से देखने का प्रयास करें। सैयद इब्राहिम रसखान के काव्य के आधार भगवान श्रीकृष्ण हैं। उनके द्वारा अपनाए गए काव्य विषयों को तीन खंडों में बाँटा गया है– कृष्ण-लीलाएँ, बाल-लीलाएँ तथा गोचारण-लीलाएँ।

कृष्ण-लीलाएँ

लीला का सामान्य अर्थ खेल है। कृष्ण-लीला का अभिप्राय कृष्ण (प्रभु) का खेल है। इसी खेल को सृष्टि माना जाता है। सृजन और ध्वंस को व्यापकता के आधार पर सृष्टि कहा जाता है। कृष्ण-लीला और आनंदवाद एक-दूसरे से संबंधित हैं, जिसने लीला को पहचान लिया, उसने आनंद धाम तक अपनी पहुँच बनाई और हरि लीला के दर्शन कर लिए। रसखान चूँकि प्रेम के स्वच्छंद गायक थे इसीलिए इन लीलाओं में उन्होंने प्रेम की अभिव्यक्ति भगवान श्रीकृष्णको आधार मानकर की है।

कृष्ण की अनेक लीलाओं के दर्शन रसखान ने अपने काव्य में कराए हैं। इन लीलाओं में कई स्थानों पर आध्यात्मिक झलक भी पाई जाती है। रसखान की काव्य रचना में बाललीला, गौचारण-लीला, कुँजलीला, रासलीला, पनघटलीला, दानलीला, वनलीला, गौरस लीला इत्यादि लीलाओं के दर्शन होते हैं।

बाल-लीलाएँ

रसखान ने कृष्ण की बाल-लीला संबंधी कुछ पदों की रचना की है, किंतु उनके पद कृष्ण के भक्त जनों के कंठहार बने हुए हैं। ज़्यादातर कृष्णभक्त इन पदों को प्रायः गाया करते हैं :

काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी।

कृष्ण के मानवीय स्वरुप ने रसखान को अधिक प्रभावित किया, लेकिन रसखान ने अपने पदों में उनके ब्रह्मत्व को खास स्थान दिया है।

इन बाल-लीलाओं में रसखान ने कृष्ण को एक शिशु के रुप में दिखाया है। उनके लिए छौने शब्द का प्रयोग किया गया है :

आजु गई हुती भोरही हौं रसखानि रई कहि नंद के भौंनहिं।

बाको जियौ जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यों नहिं।।

तेल लगाइ लगाइ कै अंजन भौंह बनाइ बनाइ डिठौनहिं।

डालि हमेलनि हार निहारत बारत ज्यौं चुचकारत छौंनहिं।।

एक अन्य पद में रसखान ने श्रीकृष्ण को खेलते हुए सुंदर बालक के रुप में चित्रित किया है :

धूर भरे अति शोभित श्याम जू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।

खेलत खात फिरैं अँगना पग पैंजनी बाजती, पीरी कछोटी।।

वा छवि को रसखानि बिलोकत बारत काम–कला निज कोटी।

काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी।।

रसखान के बाल-लीला से संबंध रखने वाले पद बहुत ही सुंदर और भावपूर्ण हैं। कृष्ण धूल भरे आँगन में खेलते-खाते हुए फिर रहे हैं। घुँघरू बज रहे हैं। हाथ में माखन और रोटी है। कौआ आकर कान्हा के हाथ से रोटी लेकर उड़ जाता है। काग की यह आम आदत है कि वह बच्चों के हाथों से कुछ छीन कर भाग जाता है। इस दृश्य को रसखान ने हृदयस्पर्शी बना दिया है।

गोचरण-लीलाएँ

कृष्ण-जब बड़े होते हैं, वह ग्वालों के साथ गायें चराने वन जाने लगते हैं। कृष्ण की गोचरण की तमाम अदाओं पर गोपियाँ दीवानी होने लगती है। कृष्ण कालिंदी के तीर पर खड़े हो गउएँ चरा रहे हैं। गाएँ घेरने के बहाने गोपियों से आकर अड़ जाते हैं :

गाइ सुहाइ न या पैं कहूं न कहू, यह मेरी गरी निकर्‌यौ है।
धीरसमीर कालिंदी के तीर खर्‌यो रहै आजु री डीठि पर्‌यौ है।
जा रसखानि बिलोकत ही सहसा ढ़रि राँग सो आँग ढ़र्‌यौ है।
आइन घेरत हेरत सो पट फेरत फेरत टेरत आनि पर्‌यौ है।

कृष्ण वंशी बजाते गाय चराते हुए कुंजों में डोलते हैं। गोपियाँ कृष्ण के गोचरण- रुप पर प्राण देने को तैयार है। जिस दिन से कृष्ण ने गायें चराई हैं, उसी दिन से गोपियों पर टोना सा हो गया है। केवल गोपियाँ ही नहीं, संपूर्ण ब्रज कृष्ण के हाथ बिक गया है।रसखान ने कृष्ण की गोचरण लीला को मनोहर और चित्रात्मक ढंग से प्रकट किया है।

बोध प्रश्न

5. निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (✗) का निषान लगाइए।

(क) 'दानलीला' को रसखान की प्रमाणिक रचना स्वीकार किया गया है। ( )

(ख) 'प्रेम वाटिका' में कुल एक सौ दोहे हैं। ( )

(ग) रसखान ने कृष्ण की गोचरण लीला को प्रतीकात्मक रूप में पेष किया है।

( )

(घ) रसखान की रचनाओं में अरबी– फारसी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

( )

6. रसखान वर्णित कृष्ण लीलाओं के बारे में बताइए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

7. रसखान लीला वर्णन में किन बातों का ध्यान रखते हैं? (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

8. रसखान की रचनाओं का परिचय दीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

11.5 रसखान का प्रेमदर्शन

ऐसा माना जाता है जो लौकिक प्रेम के रास्ते प्रेम की व्याप्ति का अनंत रूप देखने में सफल होता है उसकी कविता का प्राणतत्व जिस प्रेमदर्शन की साधना करता है, वह लाजवाब होता है। रसखान इसी प्रेमदर्शन के कायल थे। यह अकारण नहीं है कि उनके प्रेम की अभिव्यक्ति में जड़-चेतन का समग्र रूप शामिल होता है। रसखान प्रेम के वियोग को जिस गहराई से देखते हैं, वह अद्‌भुत है। वे प्रेम को एक शिखा(बाती) के रूप में देखते हैं। एक ऐसी शिखा जो वियोग की ताप में सुलगती रहती है। खौलते हुए स्नेह में तपती रहती है, थोड़ी-थोड़ी देर पर भभकती भी रहती है। लेकिन जब प्रियतम के आने की खबर सुनती है तो जैसे कोई बाती उकसा दे वैसे ही उसमें अंतर्षक्ति आ जाती है, भीतर की आग रौशनी बन कर बाहर आती है :

मोहन जू के वियोग की ताप मलीन महाद्युति देह तिया की।
पंकज सों मुख गो मुरझाय लगैं लपटैं विरहागि हिया की।।
ऐसे में आवत कान्ह सुने रसखान सु तनी तरकी अँगिया की।
यों जगि जोति उठी तनकी उकसाय दई मनौं बाती दिया की।।

रसखान के प्रेम वर्णन में अनन्यता की स्थिरता है। इस अनन्यता के कारण ही रसखान के काव्य में प्रेमिका को वह बाँसुरी बैरिन लगती है जिसे कृष्ण अपने होठों से लगाए रहते हैं। वह दिन-रात कृष्ण को अपने बस में किए रहती है। गोपियाँ बाँसुरी को सौत कहती हैं। वे कहती हैं कि सौत की साँसत के जुल्म से लगता है, ब्रज छोड़ना पड़ेगा :

जग कान्ह भये बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमको चहिहै।

यह राति दिना सँग लागी रहै वा सौति कि साँसत को सहिहै।।

जिन मोहि लियो मन मोहन को रसखान सु क्यों न हमैं दहिहै।

मिलि आओ सबै कहिं भागि चलैं अब तो ब्रज में बँसुरी रहिहै।।

रसखान के काव्य में प्रेयसी को लोक का भय नहीं है, भय इस बात का है कि कान्हा कहीं बिसरा न दें। उनके लिए इश्क में फना होने के लिए हर कुर्बानी जायज़ है :

डरै सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।

रहै एक रस चाहकै, प्रेम बखानौ सोय।।

लेकिन कान्हा प्रेम को बिसराकर मथुरा चले गए। और इधर अहीरन प्रेयसी खुद को ही सज़ा देती है और मन को समझाती है कि ग़लती तो उससे हुई है। रसखान की प्रेयसी सोचती है वह माखन-सा मन लेकर माखन चोर की ओर गई ही क्यों? उसे अहसास ही नहीं रहा कि उसका प्रेमी त्रिभंगी है, वह त्रिभंगी प्रेमी उसे बांका क्यों न बनाए :

सुंदर स्याम सिरोमनि मोहन जोहन में चित चोरत है।

बाँके बिलोकनि की अवलोकनि नोकनि कै दृग जोरत है।।

रसखानि महावर रूप सलोने को मारग तैं मन मोरत है।

ग्रहकाज समाज सबै कुल लाज लला ब्रजराज के तोरत है।।

रसखान का प्रेमदर्शन तथाकथित मर्यादाओं को अपनी वेगवती धारा में बहा ले जाता है। मर्यादा की शपथ दिलाए वे सारे वचन जिनमें प्रेयसी को बाँधा गया था उस समय भोंथरे हो गये जब कान्हा ने मुस्कुराकर देखा, अब यह याद ही नहीं रहा कि किस राह पर चलना था

और किसे छोड़ना ! तन की सुधि नहीं रही, दही हांडी फूटी, आँखों से लाज का पर्दा भी जाता रहा। अब होना क्या था, वही जिसकी चाहत थी, निर्दयी मनमोहन ने दही खा लिया, मटका फोड़ दिया, तन-मन का सारा गोरस छीन लिया, और वह कान्हा सब कुछ ले गया :

भौंह भरी बरुनी सुथरी अतिसै अधरानि रँगी रँग रातौ।

कुण्डल लोल कपोल महाछबि कुंजनि तें निकस्यो मुसिकातौ।

रसखानि लखै मग छूटि गयो डग भूलि गई तन की सुधि सातौ।

फूटि गयो दधि को सिर भाजन टूटिगो नैननि लाज को नाटौ।।

रसखान की कविता में उपस्थित प्रेमदर्शन पर पुष्टिमार्ग की छाया है, जिसमें इस्लाम के एकेष्वरवाद का मणिकांचन योग है। यह भारतीयता की वह विशाल नदी है जिसमें कई धाराएँ आकर सहज ही मिल जाती हैं, और भारत की बहुरंगी दार्शनिक परंपरा का निर्माण करती हैं। पुष्टिमार्ग में कृष्णलीला वर्णन का विशेष महत्व है, जिसकी सुंदर बानगी रसखान की कविता में भी उपस्थित है। कृष्ण समर्पण की यह कविता उस दुनिया की बारंबार कामना करती है जिसकी सांसों में कृष्ण बसे हैं :

प्रान वही जु रहैं रिझ वापर रूप वहीं लिहिं वाहि रिझायो।

सीस वही जिन वे परसे पद अंक वही जिन वा परसायो।।

दूध वही जु दुहायो री वाही ने दही सु सही जो वही ढरकायो।

और कहाँ लौं कहौं रसखानि री भाव वही जु वही मनभायो।।

11.6 रसखान की भाषा और काव्य सौंदर्य

रसखान की भाषा में संवाद की अद्‌भुत सामर्थ्य है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में दर्ज किया, ''इनकी भाषा बहुत चलती सरल और शब्दाडंबरमुक्त होती थी। शुद्ध ब्रजभाषा का जो चलतापन और सफाई इनकी और घनानंद की रचनाओं में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।'' कृष्णभक्त कवियों की परंपरा 'गीतकाव्य' की थी, पर रसखान ने इससे अलग दोहों, सवैयों और कवित्त में कृष्ण काव्य को गूँथा जिसकी व्याप्ति और गहराई विशिष्ट है। रसखान का प्रिय छंद सवैया और घनाक्षरी है।

रसखान के काव्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है– निरलंकृति। लेकिन यहीं यह समझ लेना चाहिए कि ऐसा नहीं है कि उन्हें अलंकारों से परहेज है। वे बहुधा अभिधा में अपनी बात कहते हैं, लेकिन वे आवश्यकतानुसार अलंकारों का प्रयोग भी करते हैं। उनके काव्य में यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि के उदाहरण मिल जाते हैं। उदाहरणस्वरूप :

यमक

बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सों सानी।

...

त्यों रसखानि वही रसखानि जु हैं रसखानि सो है रसखानि।।

यहाँ भिन्न अर्थों के साथ रसखानि शब्द की आवृत्ति है। इसी तरह अर्थालंकार–उपमा की बानगी देखि जा सकती है :

तिरछी बरछी सम मारत है दृग बान कमान सुजान लग्यौ।

...

जाको लसै मुख चंद समान सुकोमल अंगनि रूप लपेटी।

उल्लिखित काव्य पंक्तियों में 'तिरछी बरछी सम मारत है' और 'जाको लसै मुख चंद समान सुकोमल' में उपमा अलंकार की सुंदरता अभिव्यक्त है।

रसखान की भाषा का लोक संस्कार उन्हें अपने ढंग का विशिष्ट रचनाकार बनाता है। भले ही उनकी कविता में घनानंद की तरह प्रवीणता न दिखे या फिर बिहारी की तरह पांडित्य! उनका लोक संस्कार कविता में जिस जीवन राग को संभव करता है, हिंदी कविता उसी की मुरीद हुई। विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है, ''शब्द-संपदा, अर्थ-गौरव, भाव-गरिमा, प्रांजलता, संप्रेषण-शक्ति और भावाभिव्यंजना की दृष्टि से रसखान-काव्य गुणात्मक एवं विशिष्ट है। यद्यपि रसखान घनानंद की भाँति ब्रजभाषा प्रवीन और बिहारी की भाँति ब्रजभाषा-पंडित नहीं हैं तथापि उनकी ब्रजभाषा की अपनी विशेषता है और वह है उसका ग्राम्य संस्कार, उसकी निरलंकृति और सरलता। सहज और सरल भाषा अर्थात चिर-परिचित शब्दावली का मार्दवयुक्त प्रयोग वे ही रचनाकार कर पाते हैं जिनका संबल निष्ठा है। निष्ठा शब्दाडंबर में नहीं होती। कहना न होगा कि रसखान ऐसे ही निष्ठावान कवि हैं।'' जिन्हें भारतीय काव्यशास्त्र प्रसाद गुण कहता है, उसकी उत्कृष्ट झलक रसखान के रचनात्मक संसार में नज़र आती है।

बोध प्रश्न

9. रसखान की भक्ति के स्वरूप का वर्णन कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10. रसखान की भाषा और काव्य-सौंदर्य पर प्रकाष डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.7 रसखान के काव्य का वाचन और आस्वादन

काव्य का वाचन

देखिए– परिशिष्ट

काव्य का आस्वादन

- **मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत काव्य पंक्तिया रसखान रचित एक सवैया है जिसमें उन्होंने कृष्ण के प्रति अपनी एकनिष्ठता की अभिव्यक्ति की है।

व्याख्या

यहाँ पर रसखान ने कन्हैया की लीलाभूमि ब्रज के प्रति अपने असीम लगाव का वर्णन किया है। वे कहते हैं, चाहे मनुष्य का शरीर हो या पशु का; हर हाल में ब्रज में ही निवास करने

की उनकी चाहत है। यदि मनुष्य हों तो गोकुल के ग्वालों के रूप में बसना चाहिए। यदि पशु हों तो नंद की गायों के साथ चरना चाहिए। यदि पत्थर हों तो उस गोवर्धन पहाड़ पर होना चाहिए जिसे कृष्ण ने अपनी उँगली पर उठा लिया था। यदि पक्षी हों तो उन्हें यमुना नदी के किनारे कदम्ब की डाल पर बसेरा करना पसंद हैं। प्रसाद शैली में रचित इस सवैये की भाव भंगिमा जितनी लाजवाब है, उतनी ही शिल्प योजना भी।

विशेष

(I) यह सवैया छंद में रचित है। सवैया ब्रजभाषा में रचित काव्य का अत्यंत लोकप्रचलित छंद है।इसके प्रायः पचास भेदों का ज़िक्र मिलता है। किसी एक लक्षण का निर्धारण सवैये के लिए संभव नहीं। यहाँ प्रत्येक पंक्ति चौबीस वर्णों से युक्त है।

(II) रसखान की कविता चित्रात्मकता के लिहाज से अनूठी है, जिसका परिचय यहाँ भी मौजूद है। गो प्रेमी ब्रज और उसके नायक कृष्ण से लागाव को प्रकट करने के लिए ऐसी दृश्य योजना बेहतरीन है। ऐसा लगता है, विभिन्न दृश्यों के माध्यम से रसखान आत्मीय संवाद कर रहे हैं।

- **संभु धरै ध्यान जाकौ जपत जहान सब, ...**

संदर्भ

प्रस्तुत कविता रसखान द्वारा रचित एक ववित्र है।

व्याख्या

रसखान भारतीय आध्यात्मिक और आनुष्ठानिक परंपरा से आत्मीय परिचय रखते हैं, जिसका साक्ष्य इस कवित्त में उपस्थित है। इसी तरह उनका कृष्ण प्रेम जगजाहिर है। इस पद में वे

कहते हैं, शिव स्वयं जिन्हें आराध्य मान उनका ध्यान करते हैं, सारा संसार जिनकी पूजा करता है, जिससे महान कोई दूसरा देव नहीं। वही कृष्ण साकार रूप धारण कर अवतरित हुए हैं और अपनी अद्‌भुत लीलाओं से सबको चौंका रहे हैं। वे विराट देव अपनी लीला के कौतुक में नंद बाबा के आँगन में मिट्‌टी खाते फिर रहे हैं।

(I) यहाँ भी दृश्यों का संयोजन लाजवाब है। उनके काव्य में फोटोग्राफी और जूम का सुंदर संयोग मानो संयोजित है।

(II) रसखान की ब्रजभाषा इतनी सरल है जैसे कोई लोकचितेरा बेहतरीन अंदाज़ में अपने अहसास का बयान कर रहा हो।

(III) काव्यशास्त्रीय परंपरा के लिहाज से यह कवित्त छंद में रचित है। कवित्त एक प्रकार का छंद है। इसमें चार चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में 16, 15 के विराम से 31 वर्ण होते हैं। प्रत्येक चरण के अंत में 'गुरु' वर्ण होना चाहिए। छंद की गति को ठीक रखने के लिये 8, 8, 8 और 7 वर्णों पर 'यति' रहना आवश्यक है। उल्लिखित विशेषताएँ इस उदाहरण में भी उपस्थित है।

- **बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सो सानी। ...**

व्याख्या

कृष्ण के प्रति अपनी तन्मयता व्यक्त करते हुए रसखान कहते हैं कि उसी वाणी की सार्थकता है जो उनका गुणगान करती है तथा कान वही सराहे जाने योग्य है जो केवल कृष्ण के गुणगान को सुनती है। हाथ वही महत्वपूर्ण है जो उनके शरीर को माला पहनाती है तथा पाँव वही सरहना के योग्य है जो कृष्ण के द्वारा बताए गए मार्ग पर अनुगमन करती है। वही

जिंदगी सफल है जो कृष्ण के संग बीतती है तथा मान वही सार्थक है जो कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त कर उनके साथ मनमानी कर सके। रसखान कहते हैं रस के खान अर्थात कृष्ण प्रेम के पूँज तथा प्रचुर आनंद प्रदान करने वाले हैं।

- **एक सु तीरथ डोलत है इक बार हजार पुरान बके हैं। ...**

व्याख्या

रसखान ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण को महत्वपूर्ण मानते है, बाह्याडंबर को नहीं। इस सवैये में वे कहते हैं कि कोई तीर्थस्थानों में धूम रहा है; कोई हजारों बार पुराण की कथा कहता है, उसका पाठ करता है; कोई जप कर रहा है; कोई सिद्ध है पर समाधि में अटका हुआ है। रसखान कहते हैं अगर सचेत होकर देखा जाए तो सारे नासमझ हैं और भटक रहे हैं। सत्य को वही पाता है जो स्वयं को कृष्ण पर न्यौछावर कर देता है। उनके प्रेम रूपी नीर को पीकर मस्त है।

- **प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानइ कोई। ...**

व्याख्या

सब लोग प्रेम-प्रेम की रट लगाते रहते हैं। अर्थात प्रेम करने, प्रेम के महत्व को जानने का दावा करते हैं पर दरअसल प्रेम के वास्तविक रूप को कोई नहीं जानता। अगर आदमी प्रेम को जान लेगा तो सांसारिकता के चक्कर में पड़कर क्यों रोएगा।

11.8 सारांश

- रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। वे युद्ध में हुई तबाही को देखकर सांसारिकता से विरक्त हो गए और पूरी तरह कृष्ण की भक्ति में डूब गए।
- उन्होंने स्वामी विट्ठलनाथ का शिष्यत्व ग्रहण किया।
- रसखान की प्रमाणिक रचनाएँ हैं– 'सुजान रसखान', 'प्रेम-वाटिका' और 'दानलीला'।
- उन्होंने कृष्ण के जीवन से संबंधित विभिन्न भावदशाओं – बाल-लीला, गोचारण, प्रेमलीला, वियोग, कृष्ण सौंदर्य, कृष्ण भक्ति, अलौकिकत्व आदि से संबंधित मुक्तकों की रचना की।
- उनकी कृष्ण भक्ति में गहरी रागात्मकता एवं तन्मयता का भाव दिखाई देता है।
- रसखान के प्रेमदर्शन पर पुष्टिमार्ग और एकेश्वरवाद का प्रभाव है।
- रसखान की भाषा शब्दाडंबर से मुक्त है।

1.9 शब्दावली

शिनाख्त – पहचान

हदबंदियों – सीमाओं

फना – न्योछावर

जुनून – दीवानापन

बेखुदी – सुध-बुध खो देना

बहिर्साक्ष्य – बाह्य प्रमाण

अंतर्साक्ष्य – भीतरी प्रमाण

ग़दर – युद्ध

कुंज-विलास – वन में प्रणय (प्रेम)

वयःसंधि – किशोरावस्था

सुकुमारता – कोमलता

पुनर्विचार – फिर से विचार

आख्यान – कहानी

ज़िक्र – उल्लेख

विदग्धता – चतुरता पूर्वक पर पुरुष को आकर्षित करने वाली नायिका

उपजीव्य – जिसके आधार पर तथ्य प्रकट हो

रमणीयता – आकर्षण

उलाहना – प्रेमपूर्ण शिकायत करना

बटमार – राह में लूटने वाला

बरजोरी – जबरदस्ती

एकेश्वरवाद – यह मत कि जगत का स्रष्टा और संहारक एक है

साँसत – अत्यधिक कष्ट

पुष्टिमार्ग – पोषण का मार्ग अर्थात ईष्वर जिसपर स्वयम् कृपा करे

शब्दाडंबरमुक्त – शब्दों के दिखावे से दूर

आनुष्ठानिक परंपरा – कर्मकांड की परंपरा

लोकचितेरा – लोक का सजीव चित्रण करनेवाला

11.10 उपयोगी पुस्तकें

रसखान रचनावली : संपादक– विद्यानिवास मिश्र; संयुक्त संपादक– सत्यदेव मिश्र; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल; नागरी प्राचारिणी सभा, वाराणसी

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) रसखान का पूरा नाम सैयद इब्राहिम रसखान था।

   (ख) भारतेंदु हरिश्चंद्र ने रसखान पर करोड़ों हिंदुओं को न्योछावर करने की बात की है।

2. देखिए – भाग 11.2

3. (क) 'रामचरितमानस' रसखान को स्वयं तुलसीदास ने सुनाया था।

   (ख) रसखान के दीक्षा गुरु विट्ठलदास थे।

4. देखिए – भाग 11.2

5. (क) ✓

   (ख) ×

   (ग) ×

   (घ) ✓

6. देखिए – भाग 11.4

7. देखिए – भाग 11.4

8. देखिए – भाग 11.3

9. देखिए – भाग 11.4

10. देखिए – भाग 11.6

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 12 : नज़ीर अकबराबादी का काव्य

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 नज़ीर अकबराबादी का जीवनवृत्त

12.3 नज़ीर अकबराबादी का काव्य संसार

12.4 नज़ीर अकबराबादी की कविताओं में लोक जीवन

12.5 नज़ीर अकबराबादी की कविताओं का प्रकृति वर्णन

12.6 नज़ीर अकबराबादी की कविताओं धर्म पर एक नया रवैया

12.7 नज़ीर अकबराबादी की भाषा

12.8 'रोटी' कविता आस्वादन

12.9 सारांश

12.10 शब्दावली

12.11 उपयोगी पुस्तकें

12.12 बोध प्रश्नों/अभ्यास के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य उत्तर भारत के प्रसिद्ध कवि नज़ीर अकबराबादी के काव्य की विशिष्टताओं से आपको परिचित कराना है। इस इकाई में सबसे पहले साहित्य और समाज

के अंतरंग संबंधों के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है और फिर इसका नज़ीर के साहित्य से संबंध स्थापित किया गया है। यहाँ नज़ीर की संक्षिप्त जीवनी से भी आपको परिचित कराया गया है। नज़ीर अपने समय के लोकप्रिय शायर थे लेकिन बाद के समय में नज़ीर की किस तरह की पहचान स्थापित हुई। इस इकाई में नज़ीर के साहित्य पर पड़े विभिन्न भाषाई प्रभाव और नज़ीर की खुद की भाषा की भी पड़ताल की गई है। इकाई के अंतिम भाग में नज़ीर की काव्य की कुछ प्रमुख विशशताओं पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई में नज़ीर के साहित्य को उसके अपने काल के संदर्भ में और वर्तमान के संदर्भ में भी देखने का प्रयास किया गया है।

12.1 प्रस्तावना

इस बात से शायद ही किसी की असहमति होगी कि किसी भी साहित्य का उस समाज से एक गहरा रिश्ता होता है जिसमें उसका सृजन होता है। इस रिश्ते का एक रूप तो यह है कि साहित्य अपने ही समाज का प्रतिबिंब होता है और उस समाज की विशशताएँ साहित्य में सहज रूप से विद्यमान रहती हैं। लेकिन साहित्य समाज का दर्पण मात्र ही नहीं, बल्कि दीपक भी होता है जो समाज का मार्गदर्शन भी करता है। लेकिन अगर सारे साहित्य का सृजन समाज के द्वारा प्रदत्त विचारों के ही संदर्भ में हो रहा है, फिर ऐसा साहित्य समाज का मार्गदर्शन कैसे कर सकता है क्या साहित्य सृजन के सारे स्रोत समाज से ही आते हैं?

19वीं सदी के महान उर्दू कवि गालिब ने अपने एक शेर में लिखा है कि उनकी शायारी के लिए विचार इस दुनिया से बाहर की किसी पारलौकिक शक्ति से आते हैं, और उनकी कलम की नोक उसी महाशक्ति की वाणी का प्रतिफलन है :

आते हैं ग़ैंब[1] से ये मज़ामी[2] ख्याल में,
गालिब सरीरेखामा[3] नवाए सरोश[4] है।

अर्थात – मेरे विचार आकाश से उतर कर मेरे पास आते हैं। मेरे कलम की आवाज़ ईश्वर के वचन का स्रोत है।

इसके बिल्कुल विपरीत 18वीं सदी के महान उर्दू शायर मीर तकी मीर ने लिखा है कि उनका सारा 'दीवान' इस दुनिया के कष्ट और मुसीबतों का संग्रह मात्र है, उसमें और बाहर से कुछ भी नहीं :

मुझको शायर न कहो मीर कि साहिब मैंने
दर्दों ग़म जितने किये जमा तो दीवान किया।

इस फलसफे के अनुसार कोई भी साहित्य अपने समय की परिस्थितियों, विचारों तथा पूर्वाग्रहों का परिलक्षण मात्र होता है। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए मीर ने लिखा :

दरहमी[5] हाल[6] की है सारी मेरे दीवां[7] में
तू भी कर सैर यह मजमूआ[8] परीशानी था।

अर्थात वर्तमान की सारी बेचैनी और अस्त-व्यस्तता मेरे साहित्य में समाई हुई है। तू भी आ और परेशानी के इस संग्रह की सैर कर।

इन दोनों विचारों के अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि ऊपर और बाहर के अलावा साहित्य साहित्यकार के अंतर्मन से भी उपजता है। साहित्यकार दुनिया को अपने अंदरुनी

---

[1] आकाश
[2] यहाँ 'साहित्यिक विचार' के संदर्भ में
[3] कलम की आवाज
[4] ईश वचन
[5] बुरा काल, बेचैनी
[6] वर्तमान
[7] साहित्य
[8] संग्रह

चश्मे से देखता है और उसका साहित्य उस दुनिया का वर्णन न होकर अपनी अंतर्व्यथा का मूर्त रूप मात्र होता है।

साहित्य और समाज के रिश्तों की इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए इस इकाई में नज़ीर के साहित्य पर चर्चा की जा रही है। नज़ीर के साहित्य में उनके व्यक्तिगत अनुभव संग्रहीत हैं; यहाँ समय और स्थान की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए उपलब्ध विचारों का भंडार है; व्यक्तिगत अनुभवों के परे एक व्यापक संदर्भ भी है; और इस संदर्भ को लाँघते हुए (उससे ऊपर उठते हुए) कुछ सार्वभौमिक विचार भी हैं। दूसरे शब्दों में नज़ीर अपने समय के भी कवि हैं और अपने समय से आगे के भी। उनके साहित्य का अपना एक संदर्भ है जो काल और स्थान से निर्धारित होता है। लेकिन उस संदर्भ की सीमाओं को लाँघते हुए उसमें एक सार्वभौमिकता भी है। प्रस्तुत इकाई में नज़ीर के साहित्य के इन सभी पहलुओं पर चर्चा की जा रही है।

12.2 नज़ीर अकबराबादी का जीवन वृत्त

नज़ीर अकबराबादी का जन्म 1835 ई. में दिल्ली में हुआ। यह दौर दिल्ली पर मुसीबतों का था और उस पर लगातार बाहर से आक्रमण हो रहे थे। कुछ समय बाद, बाईस-तेईस साल की अवस्था में नज़ीर अपनी माँ और नानी को साथ लेकर दिल्ली से आगरे आ गए। आगरे का पुराना नाम अकबराबाद भी था। यहाँ उन्होंने अपना पूरा जीवन बिताया और नज़ीर अकबराबादी के नाम से कविताएँ कहीं। 1830 ई. के आसपास उनका देहांत हो गया।

नज़ीर ने कहा ज्यादा, लिखा कम। उनकी कविताओं का उनके समय में मौखिक प्रसार ही अधिक हुआ। जो कुछ उन्होंने लिखा उसका बेहतर संरक्षण नहीं हो पाया और बहुत कुछ

नष्ट हो गया। उनके शिष्यों ने, जिन्हें वे फारसी पढ़ाते थे, उनकी बहुत सारी कविताओं को लिख रखा था। वे ही कविताएँ आज हमारे लिए उपलब्ध हैं।

नज़ीर की जीवनी का एक खास पहलू है जो उन्हें अपने समय के अन्य बड़े कवियों से अलग करता है तथा जिसका असर उनकी कविताओं पर सीधे देखा जा सकता है। वह खास पहलू यह है कि नज़ीर किसी भी सरकारी या सामंती संरक्षण का हिस्सा नहीं थे। कवियों के लिए राजकीय संरक्षण मध्यकालीन सामंती व्यवस्था का एक खास हिस्सा था। किसी भी राजव्यवस्था के लिए जैसे सेना, नौकरशाही और राजस्व वसूली जरूरी थी, वैसी ही जरूरत दरबारी कवियों तथा साहित्यकारों की होती थी। इन कवियों और साहित्यकारों को सम्मान की नज़र से देखा जाता था और इनके जीवन-यापन की जिम्मेदारी प्रशासन की होती थी। इस तरह से सभी बड़े कवि किसी भी संरक्षण तंत्र का हिस्सा होते थे। इस तरह के कवियों अपने काव्य को सृजन के लिए ज्यादा अवकाश होता था क्योंकि वे जीवन-यापान की जिम्मेदारियों से मुक्त रहते थे। लेकिन उनका साहित्यिक और सामाजिक नज़रिया भी इसी यथार्थ से निर्धारित होता था।

नज़ीर की विशशता यह थी कि वे किसी भी प्रकार के संरक्षण तंत्र का हिस्सा नहीं थे। अपनी जीविका के लिए आगरे के एक व्यापारी के बच्चों को फारसी पढ़ाते थे। लखनऊ और भरतपुर के नवाबों ने उन्हें आमंत्रण भेजा कि वे उनके दरबार में आकर काव्य-रचना करें। उनके लिए काफी रुपया भी भेजा गया। लेकिन नज़ीर को वह रुपया आकृष्ट न कर सका और उन्होंने आगरा छोड़कर कहीं भी जाने से इंकार कर दिया।

राजकीय संरक्षण के अभाव ने नज़ीर के साहित्य को एक नया आयाम दिया। उनकी कल्पनाशीलता दरबारी यर्थाथ की सीमाओं को लाँघकर मानव जीवन को अपनी व्यापकता में देख सकी। यह व्यापक नजरिया उनके काव्य में काफी अच्छी तरह से परिलक्षित होता है।

नज़ीर की एक और विवशता थी– कई भाषाओं का ज्ञान। निश्चित रूप से इन भाषाओं के साहित्य से उनकी वाकफियत रही होगी और उनका काव्य इस बात से काफी समृद्ध हुआ होगा। सामान्य तौर पर भी तीन प्रकार के साहित्यिक और भाषाई प्रभाव को नज़ीर के काव्य में देखा जा सकता है – फारसी, संस्कृत और ब्रज। फारसी से उन्हें एक खास दर्शन, सार्वभौमिकता और जीवन पर एक खास नज़रिया मिला। संस्कृत से एक पैनी दृष्टि, ऋतु वर्णन और सौंदर्यबोध मिला और ब्रज से स्थानीय रूप रंग मिला। तीज-त्योहार, मेले, रीति-रिवाज, सामाजिक जीवन की झाँकी, कृष्ण लीला इत्यादि ब्रज की विरासत के द्वारा नज़ीर के साहित्य में आए। नज़ीर के काव्य में विषय-वस्तु की विविधता तथा बिंब और प्रतीकों की विविधता इसी बहुभाषायी प्रभाव के कारण है।

निस्संदेह नज़ीर अपने समय में काफी लोकप्रिय रहे होंगे। लेकिन ऐसा लगता है कि उनके बाद की पीढ़ी ने उनको भुला दिया। 19वीं सदी के अंत तक उर्दू और हिंदी का विभाजन काफी स्पष्ट और मुखर हो चुका था। यह विभाजन राजनीतिक भी था और साहित्यिक भी। दोनों भाषाओं के इतिहास भी अलग-अलग लिखे जाने लगे। और दोनों ही भाषाओं के लिखित इतिहास में नज़ीर को दरकिनार कर दिया गया। उर्दू साहित्य के इतिहास पर जो मुख्य किताबें लिखी गईं उन्होंने नज़ीर को नजरअंदाज कर दिया। हिंदी साहित्य का जो इतिहास लिखा गया उसने भी नज़ीर की अवहेलना ही की। कहने का अभिप्राय यह है कि 19वीं सदी

के अंत तक जो प्रमाणिक उर्दू साहित्य और प्रमाणिक हिंदी साहित्य की फेहरिस्त बनी, नज़ीर उसमें से पूरी तरह से गायब थे।

नज़ीर के साहित्य को पुनः प्रतिष्ठित करने का काम किया एक यूरोपीय विद्वान फैलन ने। उन्होंने नज़ीर को पुरानी उर्दू के सबसे महान शायर के सम्मान से नवाज़ा। इसके बाद भारतीय आलोचकों का ध्यान भी नज़ीर की तरफ गया। रामबाबू सक्सेना ने 1927 ई. में उर्दू साहित्य के इतिहास पर अंग्रेजी में एक किताब लिखी जिसमें उन्होंने नज़ीर का जिक्र किया। नज़ीर के पूरे साहित्य को उन्होंने तीन श्रेणियों में विभाजित किया – रोड़े-कंकड़, पत्थर और जवाहरात। नज़ीर का बहुत-सा साहित्य जो सस्ता, बाजारू और अश्लील समझा जाता था, रोड़े-कंकड़ की श्रेणी में डाल दिया गया। निश्चित रूप से यह उर्दू और हिंदी दोनों में विकसित हुए शुद्धतावादी नज़रिये का परिणाम था। इस शुद्धतावादी नज़रिये के अंतर्गत भोगे गए जीवन के कई पहलुओं (यौन-संबंध, वेश्याओं का जीवन) को सामाजिक रूप से अस्वीकार कर दिया गया और उसे एक अच्छे साहित्य सृजन के लिए अनुपयुक्त माना गया। लेकिन मानव जीवन की संपूर्णता का वर्णन करने वाले साहित्य की अधिक समय तक उपेक्षा नहीं की जा सकती। नज़ीर के साहित्य का फलक बहुत विस्तृत था और आलोचकों की दृष्टि अपेक्षाकृत संकुचित। लेकिन धीरे-धीरे इस दृष्टि में बदलाव आया और आलोचकों को नज़ीर के साहित्य की गहराई और ऊँचाई - दोनों का अहसास होने लगा। फिराक़ गोरखपुरी ने 1962 ई. में लिखी अपनी पुस्तक 'उर्दू भाषा और साहित्य' में लिखा, ''बीसवीं शताब्दी के दूसरे चतुर्थ में नज़ीर की गिनती महाकवियों में होने लगी और यह भी संभव है कि पचास या सौ वर्ष बाद उन्हें सर्वश्रेष्ठ उर्दू कवि कह दिया जाये। इस तर्क विरूद्ध समालोचना के विकास का रहस्य इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि नज़ीर की चेतना अपने समय से

बहुत आगे बढ़ी हुई थी, जिसे उनके समकालीनों ने बहुत पीछे की चीज समझा और उसको कोई महत्व नहीं दिया। ... नज़ीर बिल्कुल जन साधारण के कवि थे जो सारे जीवन को जनसाधारण की दृष्टि से देखा करते थे। उन्होंने जीवन की प्रत्येक अनुभूति का चित्रण किया है किंतु उनकी चेतना जनसाधारण के जीवन के परिप्रेक्ष्य में ही देखी जा सकती है।'' (फिराक गोरखपुरी, उर्दू भाषा और साहित्य, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1962, पृ. 49)। स्पष्ट है कि साहित्य मूल्यांकन के सामंती पैमाने (जिसका ज़ोर विशिष्ट जीवन, अभिजात वर्ग और धर्म की क्लासिकीय समझ पर रहता है) और आधुनिक मध्यवर्गीय पैमाने (जिसमें शुद्धतावाद की प्रचुरता रहती है) दोनों पर ही नज़ीर खरे नहीं उतरते। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि नज़ीर जैसा साहित्यकार अधिक समय तक उपेक्षित नहीं रह सकता।

नज़ीर को जनसाधारण तक पहुँचाने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका रही प्रसिद्ध रंगकर्मी हबीब तनवीर की। 1950 के दशक में नज़ीर दिवस के अवसर पर उन्होंने 'आगरा बाजार' नामक नाटक का लेखन और मंचन किया। 'आगरा बाज़ार' नज़ीर के जीवन पर आधारित था और इसमें नज़ीर की कविताओं के सृजनात्मक इस्तेमाल द्वारा 19वीं सदी के आगरे के जनजीवन का ताना-बाना खींचा गया था। 'आगरा बाजार' नज़ीर के साहित्य के जनोन्मुखी पहलू को बड़े अच्छे ढंग से उजागर करता है।

12.3 नज़ीर अकबराबादी का काव्य संसार

अब तक आप जान चुके हैं कि नज़ीर एक बहुआयामी कवि थे। उनकी कविता को किसी एक साहित्यिक परंपरा के हिस्से के रूप में देखना संभव नहीं। लगभग यही बात उनकी

भाषा के बारे में भी कही जा सकती है। आगे आपको नज़ीर अकबराबादी की प्रमुख रचनाओं – 'आदमी नामा' तथा 'शहर आशोब' के बारे में जानकारी दी जा रही है।

आदमीनामा

हिंदी साहित्य में 'नामा' परंपरा एक खास विधा के रूप में फारसी से आई। पुरानी फारसी के प्रसिद्ध कवि फिरदौसी (11वीं सदी) ने ईरान के बादशाहों के जीवन से संबंधित एक काव्य-ग्रंथ लिखा जिसका नाम था- 'शाहनामा'। 'शाहनामा' बहुत प्रसिद्ध हुआ और इसने बाद में आने वाले साहित्य को काफी प्रभावित किया। कालांतर में यह 'नामा' विधा और विकसित हुई। इसका एक खास विकास हुआ 'कसीदे' की दिशा में जिसमें बहुत सारा दरबारी साहित्य लिखा जाने लगा जिसमें राजाओं का महिमामंडन किया जाता था। इस तरह का साहित्य या तो राजा लोग खुद लिखते थे या अपने दरबारियों से लिखवाते थे। मध्यकाल में लिखे जाने वाले 'बाबरनामा', 'हुमायूँनामा', 'अकबरनामा' इत्यादि इसी प्रकार के साहित्य थे।

नज़ीर ने अपनी कविता के माध्यम से इस 'नामा' परंपरा को एक खास दिशा में विकसित किया। उन्होंने इस परंपरा को आगे तो बढ़ाया लेकिन इसे बिल्कुल ही उलट कर रख दिया। उन्होंने 'शाहनामा' के बिल्कुल ही विपरीत लिखा – 'आदमीनामा'। 'आदमीनामा' एक लंबी कविता है जो किसी राजा या विशिष्ट व्यक्ति को नहीं बल्कि मनुष्य मात्र को महिमामंडित करती है। इस कविता के अनुसार इंसान समूचे मानव-समाज की सबसे महत्वपूर्ण इकाई है और उसमें नैतिक ऊँचाइयों और पाशविक निचलेपन की सभी संभावनाँ मौजूद हैं। कविता की पहली ही पंक्ति है :

दुनिया के बादशाह है सो है वो भी आदमी

और मुफलिसो गदा[9] है सो है वो भी आदमी।

ऊँचाई और नीचाई, बड़प्पन और छोटापन, महानता और नीचता, सभी संभावनाएँ 'आदमीनामा' में मौजूद हैः

यां आदमी पे जान को वारे है आदमी
और आदमी को तेग[10] से मारे है आदमी
पगड़ी भी आदमी की उतारे है आदमी
चिल्ला के आदमी को पुकारे है आदमी
जो सुन के दौड़ता है सो है वो भी आदमी!

इसी कविता की अतिंम पंक्तियाँ है :

अशराफ[11] और अजलाफ[12] से ले शाह ता वज़ीर
या आदमी ही करते हैं सब काम दिल पज़ीर[13]
या आदमी मुरीद[14] है और आदमी ही पीर[15]
अच्छा भी आदमी ही कहाता है या नज़ीर
और सबमें जो बुरा है सो है वे भी आदमी!

इस तरह से नज़ीर ने न सिर्फ 'नामा' परंपरा को एक नया आयाम दिया बल्कि आगे आने वाले कवियों को 'नामा' परंपरा को इस्तेमाल करने का एक नया रास्ता भी दिखाया। इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए 19वीं-20वीं सदी के उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि अकबर इलाहाबादी (1846 ई. - 1922 ई.) ने एक काव्य-ग्रंथ लिखा 'गांधीनामा'। अकबर इलाहाबादी महात्मा गांधी के बड़े प्रशंसक थे और उन्हें यूरोप से उठती एक औद्योगिक संस्कृति की आँधी के खिलाफ, पूर्व के एक टिमटिमाते दिए की तरह दखते थे :

---

[9] निर्धन और निकृष्ट
[10] तलवार
[11] उच्चवर्ग
[12] निम्नवर्ग
[13] सुख देने वाले
[14] शिष्य
[15] गुरू

बुझी जाती थी शम्मा[16] मशरिकी[17] मगरिब[18] की आंधी से।
उम्मीदे रौशनी[19] कायम है लेकिन भाई गांधी से।।

अर्थात पूरब का टिमटिमाता हुआ दीपक पश्चिम (यानी आधुनिकता) से उठने वाली आँधी से बुझा जाता था। लेकिन भाई गांधी के कारण रौशनी की उम्मीद बची हुई है।

इस तरह से नज़ीर अकबराबादी ने नामा परंपरा को एक नया कलेवर दिया और उसकी नई समझ के लिए ज़मीन तैयार की। नजीर की इस नई समझ को स्थानीय सार्वभौमिकता का नाम दिया जा सकता है। सार्वभौमिकता इसका एक पहलू है जिसके तहत समूची मानवता को एक साझी विरासत के हिस्से के रूप से देखा गया है। लेकिन साथ ही हर इंसान की स्थानीयता पर भी जोर है। यह स्थानीय सार्वभौमिकता नज़ीर के समूचे साहित्य की एक विशशता है।

शहर-आशोब

18वीं सदी की उर्दू से एक नई तरह की कविता का जन्म हुआ जिसे कालांतर में शहर-आशोब के नाम से जाना गया। इसमें शहर के पतन और विनाश का मार्मिक विवरण होता था। 18वीं सदी के महान कवि मिर्जा रफी 'सौदा' और मीर तक़ी मीर ने काफी शहर-आशोब लिखा।

शहर-अशोब की शुरूआत दिल्ली से हुई और यह स्वाभाविक भी था। जितनी बरबादी और लूटपाट दिल्ली की 18वीं सदी में हुई, उतनी शायद ही किसी और शहर की हुई हो। दिल्ली

[16] दीपक
[17] पूर्वी
[18] पश्चिमी
[19] आशा की किरण

पर सिखों, मराठों, नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली द्वारा कई बार आक्रमण हुए और हर आक्रमण में दिल्ली शहर विनाश के कगार पर पहुँच गया। एक गणना के अनुसार दिल्ली की आबादी जो 1740 ई. के आसपास लगभग 20 लाख थी, 18वीं सदी के अंत तक घटकर सिर्फ दो लाख रह गई। इस विनाशलीला से दिल्ली का व्यापार-तंत्र तो ठप हुआ ही बहुत सारे कवि और साहित्यकार भी इसका शिकार बने। एक पूरा संरक्षण तंत्र बंद हो गया और काफी बड़े-बड़े कवियों को जीने के लाले पड़ गए। कई कवि जैसे मीर, सौदा और मुसहफी दिल्ली छोड़कर अन्य शहरों में चले गए। इस तरह के माहौल में पैदा हुई शहर-आशोब जैसी नई कविता।

लेकिन दिल्ली के शहर-आशोब की एक सामंती प्रवृत्ति रही है। ऐसा लगता है कि विध्वंस के शिकार या तो राजा थे या सामंत। और शहर-आशोब उन्हीं की कहानी कहता नज़र आता है। मीर का एक शेर हैः

दिल्ली में आज भीख भी मिलती नहीं उन्हें
कल तलक था दिमाग जिन्हें तख्तों ताज का।

दिल्ली में कल तक जो राजपाट का दावा रखते थे, आज उन्हें भीख के भी लाले पड़ रहे हैं।

साथ ही दिल्ली के शहर-आशोब में आध्यात्मिकता पर भी काफी ज़ोर रहा है। इस आध्यात्मिकता के पीछे सूफी परंपरा की पृष्ठभूमि रही है।

नज़ीर ने भी शहर आशोब लिखा लेकिन उनका शहर आशोब दिल्ली की स्थापित परंपरा के बिल्कुल विपरीत था। उसमें न तो राजाओं-महाराजाओं की बरबादी का चित्रण था और न ही

किसी अमूर्त दार्शनिकता का पुट। नजीर के 'शहर आशोब' में उनका दुख-दर्द आगरा की जनता के लिए है जिनके कारोबार और जिन्दगियाँ बरबाद हो गई हैं। स्पष्ट है कि नज़ीर के सरोकार के केंद्र में राजे-रजवाड़े न होकर सामान्य जन है जिन पर शहर की बरबादी ने कहर ढाया है।

उदाहरण के लिए देखिये :

है आज कुछ सुखन का मेरे इख्तियार[20] बंद
रहती है तबा[21] सोच में लैलो निहार[22] बंद
दरिया सुखन[23] की फिक्र[24] का है मौजदार[25] बंद
हो किस तरह न मुंह में जबां बार-बार बंद
जब आगरे की खल्क का हो रोज़गार बंद
मारे है हाथ हाथ पे सब यां के दस्तकार
और जितने पेशागार हैं रोते हैं ज़ार-जार
कूटे है तन लोहार तो पीटे है सर सुनार
कुछ एक दो के काम का रोना नही है यार
छत्तीस पेशेवालों के हैं कारोबार बंद!

कविता में नज़ीर आगरा के आम लोगों की परिशानियों के साथ खुद को खड़ा करते हुए लिखते हैं कि आज मेरी साहित्य साधना कुछ बंद-सी है। तबीयत रात-दिन चिंता में लगी रहती है। साहित्य सृजन की धारा भी बंद ही है। मुँह में आवाज़ भी बंद है। और क्यूँ न हो जब आगरे की जनता का सारा कारोबार बंद हो गया है।

---

[20] साहित्य की अभिव्यक्ति
[21] सोच, तबीयत
[22] रात-दिन
[23] साहित्य-सागर
[24] चिन्तन
[25] धारा

और इसके बाद नज़ीर उन सब पेशेवालों की बरबादी का वर्णन करते हैं। बरबाद लोगों की फेहरिस्त में शामिल है – सर्राफ, जौहरी, सेठ-साहुकार, दुकानदार, सौदागर, बजाज, पंसारी, दलाल, तारकश, बिसाती, नानबाई, भड़भूँजे, धुनिये, कागज़ बनाने वाले, डाकू, लुटेरे, कोतवाल, चौकीदार, मल्लाह, कमान बनाने वाले, शराब बनाने वाले, नक्काश, फूल बेचने वाले, हज्जाम, ज़हर उतारनेवाले, अलिम, फकीर, सिपाही, कारखाना चलाने वाले, वेश्याएँ इत्यादि। फेहरिस्त काफी लंबी है। उसमें मंदिर के संरक्षक ब्राह्मण शामिल हैं, मदरसा चलाने वाले ज्ञानी शिक्षक हैं, प्रेमी और भिखारी सभी हैं। सब पर तबाही छाई है। सबका बुरा हाल है। नज़ीर के शहर-आशोब को पढ़कर लगता है कि राजा और कुलीन वर्ग को छोड़कर हर कोई बरबादी के चपेटे में आ गया था।

नज़ीर के इस वृत्तांत की एक विशशता यह भी है कि इससे उस समय के आगरा (या अधिकतर शहरों) की व्यावसायिक परिदृश्य का अच्छा पता चलता है। साथ ही अर्थव्यवस्था के उस स्वरूप की भी जानकारी मिलती है जिसके तहत आर्थिक संकट किसी एक हिस्से तक सीमित न रहकर पूरी की पूरी व्यवस्था तक फैल जाता था। नज़ीर ने अर्थव्यवस्था ही नहीं बल्कि पूरे समाज का ही ऐसा खाका खींचा है, जिससे पूरे समाज की एक समग्र तथा आंतरिक रूप से संघटित तस्वीर सामने आती है।

नज़ीर के शहर-आशोब से पूरे शहर के साथ उनके नज़दीकी और अंतरंग रिश्ते का भी अहसास मिलता है। पूरे शहर का दर्द नज़ीर का अपना दर्द बन जाता है। वे ईश्वर से शहर की बेहतरी के लिए प्रार्थना करते हैं क्योंकि आगरा शहर उनका है और वे आगरा शहर के हैं :

है हक[26] से मेरी अब ये दुआ शाम और सहर[27]
हो आगरे की खल्क[28] पे भी मेहर[29] की नज़र
सब खावें-पीवें शाद[30] रहें अपने अपने घर
इस टूटे शहर पर भी इलाही[31] ये फ़ज़्ल[32] कर
खुल जाएं एक बार तो सब करोबार बंद।
आशिक कहो असीर[33] कहो आगरे का है
मुल्ला कहो दबीर[34] कहो आगरे का है
मुफ़लिस[35] कहो फकीर कहो आगरे का है
शायर कहो नज़ीर कहो आगरे का है,
इस वास्ते ये उसने लिखे पांच-चार बंद[36]।

अर्थात अब मेरी रात-दिन ईश्वर से यही प्रार्थना है कि आगरे की जनता पर कृपा करें, ताकि सभी लोग अपने-अपने घरों में खुशहाल और सुखी रहें। इस बरबाद शहर पर इतनी मेहरबानी कर दे कि सभी लोगों के बंद काम-धंधे एक बार फिर से शुरू हो जाएँ।

बोध प्रष्न-1

1. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए।

   (क) सामान्य तौर पर नज़ीर के काव्य पर किन-किन भाषाओं का प्रभाव दिखाई देता है?

---

[26] ईश्वर
[27] सुबह
[28] जनता
[29] मेहरबानी
[30] खुश
[31] ईश्वर
[32] कृपा
[33] कैदी
[34] मुंशी
[35] निर्धन
[36] छंद

_____

_____

(ख) किसने लिखा है कि बीसवीं शताब्दी के दूसरे चतुर्थ में नज़ीर की गिनती महाकवियों में होने लगी?

_____

_____

(ग) 'आदमी नामा' किस प्रकार की रचना है?

_____

_____

(घ) नज़ीर के 'शहर आशोब' का प्रमुख विषय क्या है?

_____

_____

2. नज़ीर के 'शहर आशोब' का प्रमुख विषय क्या है?

_____

_____

_____

_____

_____

3. नज़ीर के काव्य संसार की प्रमुख विशिष्टताओं पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

12.4 नज़ीर अकबराबादी की कविताओं में लोक जीवनवृत्त

नज़ीर अकबरावादी अपने समय और समाज के लोक जीवन से गहरे रूप से जुड़े हुए है। वास्तव में उनकी पूरी काव्य-दृष्टि आभिजात्यवादी-सामंतवादी दृष्टि से स्वतंत्र है। धार्मिक स्तर पर उनमें धर्मनिरपेक्षता दिखाई देती है तो आर्थिक स्तर पर वंचितों और गरीबों के प्रति सहानुभूति का भाव। वे जिस शिद्दत से 'शब-बारात' लिखते है उससे दुगुने उत्साह से टोली, दिवाली पर लिखते हैं। वे अगर आशिक-मासूक की मुहब्बत की दास्तां लिखते हैं तो पति के अनुपस्थिति का विरह झेल रही सामान्य स्त्री का भी वर्णन करते हैं। मेले की चहल-पहल, खेल-तमाशों की करतबें, लोक में रसे-बचे कथा-कहानियाँ, मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं तथा रोजमर्रा की जरूरतें और अभाव की पीड़ा - ये सारे विषय उनकी कविताओं में जगह पाते हैं। उनकी कविता तत्कालीन समाज की दुनियादारी के तमाम चित्र भरे परे हैं। 'इफ्लास' का नक्शा' में वे मतलब परस्त समाज से रू-ब-रू कराते हैं :

असबाब था तो क्या-क्या, रखते थे लोग रिश्ता।
मुफ्लिस हुआ तो हरगिज, रिश्ता रहा न नाता।।

न भाई-भाई कहता, न बेटा कहता बाबा।
इस पर 'नज़ीर' मुझको रोना बहुत है आता।
इस मुफलिसी जदे कोटब्बर मिला तो ऐसा।।

'आटे दाल का भाव' शीर्षक से लिखी गई अपनी दो कविताओं के माध्यम से नज़ीर अकबराबादी यह दर्शाते हैं कि मनुष्य के हर क्रिया-कलाप के भूत में आटे-दाल काटी फिक्र है। मनुष्य का सौंदर्य, शौक सब बेकार हो जाता है। वे इस कविता में संकेतात्मक रूप से उस समय लोक में विद्यमान उस शौक को सामने रखते है जो कि सामंती रूचि के नकल से बनी बनी थी, नज़ीर इसकी व्यर्थथा की ओर भी संकेत करते हैं :

मैना के पालने की, अगर दिल में मैल है।
सच पूछिए तो यह भी खराबी की जैल है।।
सब इश्कबाजी, रोजी की होती तुफैल है।
रोजी न हो तो मैना भी फिर क्या चुड़ैल है।।

नज़ीर के समय सत्ता एवं व्यवस्था का स्वरूप सामंती था। सांमती राज व्यवस्था अपने नीचे एक खुशामदी समाज निर्मित करता है। 'खुशामद' शीर्षक कविता मनुष्य एवं व्यवस्था की इस प्रवृत्ति को सामने रखते हैं :

एश करते हैं वही, है जिनका खुशामद का मिजाज।
जो नहीं करते वह रहते हैं हमेशा मोहताज।।
हाथ आता है खुशामद से मकां, मुल्क और ताज।
क्या ही तासीर की इस नुस्खे ने पाई है रिवाज।।

तत्कालीन समय लोक जीवन में मौजूद इन नकारात्मक पक्षों के साथ ही जीवन के राग-रंग, उल्लास पर उन्होंने प्रचुर मात्रा में लिखा है। उन्होंने मेला पर कई कविताएँ लिखी है। आधुनिक सभ्यता के विकास के पूर्व जब की न तो बाजार इस तरह से विकसित हुई थी और न ही मनोरंजन के साधन इतने सुलभ थे, मेला आम लोगों के आर्थिक तथा सांस्कृतिक

गतिविधियों के मंच तथा अवसर मुहैया कराता था। मेले के स्वरूप, उसमें चलने वाली तरह-तरह की गतिविधियों तथा उससे जुड़े लोगों का बहुत ही सुंदर ढंग से नज़ीर ने अभिव्यक्ति दी है। 'हजरत सलीम चिश्ती का उर्स', 'कंस का मेला' 'लल्लू जगधर का मेला' आदि उनकी मेले से जुड़ी कविताएँ है। इन सभी कविताओं भेटे के विभिन्न पक्षों की चित्रात्मक अभिव्यक्ति हुई है। बंल्देव जी का मेला' में होने वाले विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों का जिक्र किया गया है :

नाच और राग के खड़ाके हैं।
घुंघरू और ताल के झनाके हैं।
नकलें, किस्से, कहानी, साके हैं।
खंड दोहरें, कवित, कथा के हैं।
कहीं आगोश के लपाके हैं।
कहीं बोसों के सौ झपाके हैं।
थय्यरी, दांत पर कड़ाके हैं।
तिस पर जाड़े के सौ झड़ाके हैं।
रंग है रूप है, झमेला है।
जोर बल्देव जी का मेला है।

मेले के अतिरिक्त उन दिनों के लोक-जीवन में मौजूद अन्य मनोरंजक क्रिया-कलापों और मानवीय संबंध के कई पहलुओं गतिविधियों से जुड़ी कविताओं में 'कबूतर बाजी', 'बुंलबुलों की लड़ाई' आदि है जबकि मानवीय जीवन से जुड़ी कविताओं में आशिक-मासूम के संबंध, उनके राग-विराग, अकेली स्त्री का जीवन, वृद्धों के जीवन पर नज़ीर की अनेक कविताएँ हैं। इसके साथ ही नज़ीर की कविता में आम लोगों की वह बेबसी भी दिखाई देती है जहाँ वे संसाधन की कमी के कारण अपनी शौक को पूरा नहीं कर पाते :

रोजी के अब तो ऐसे घर घर में है कसाले।
हाथी व घोड़े अपने देते हैं लोग ढ़ाले।
जब तंग होवे रोजी, कौन अजहदे को पाले।
इसकी भी और हमारी यारो खबर खुदा ले।

लोक में व्याप्त संवदेनात्मक पीड़ा को नज़ीर ने अनेक संदर्भों में अभिव्यक्ति दी है। बरसात पर लिखी गई कविताओं में उन्होंने इसे प्रेमी-प्रेमिका, पति-पत्नी के लिए सुखका बताया है, वहीं उस स्त्री की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है जिसके पति पास नहीं है :

अब बिरहनों के ऊपर है सख्त बेकरारी।
हर बूंद मारती है सीने ऊपर कटारी।

नज़ीर की कविता में लोक जीवन के अनगिनत चित्र हैं। दैनंदिनी व्यवहार की चीजें-पंखा', हुक्का, ऑइना; खान-पान की चीजें – ककड़ी, तरबूज, जलेबियाँ; लोक में रची-बसी धार्मिक-पौराणिक कहानियाँ – 'जनम कन्हैया की', 'बालपन-बाँसुरी बजैया का', 'सुदामा चरित' जैसे तमाम लोक-संबद्ध विषयों पर उन्होंने कविताएं लिखी हैं।

12.5 नज़ीर अकबराबादी की कविताओं में प्रकृति वर्णन

प्रकृति वर्णन के संदर्भ में नज़ीर की कविताओं पर नजर डालने से यह तथ्य सामने आता है कि प्रकृति को देखने की उनकी दृष्टि विशिष्टि है। प्रकृति की विविधताओं और उसके विभिन्न रूपों का वे वर्णन तत्कालीन जीवन-पद्धति से जोड़कर करते हैं। प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन करते हुए वे उसमें डूब नहीं जाते हैं। वे प्रकृति के किसी खास आयाम का वर्णन करते हुए उस समय के जीवन के विभिन्न रूपों को उससे संबद्ध कर देते हैं। 'रात', 'चाँदनी', 'चाँदनी रात' आदि कविताओं में उन्होंने प्रकृति के आकर्षक, उद्दाम रूप के वर्णन के साथ तत्कालीन

सामंती जीवन के चित्र को भी प्रस्तुत किया है। 'चांदनी' शीर्षक कविता में नज़ीर की इस विशिष्टता को देखा जा सकता है :

वाह हुई थी रात क्या चांदनी की उजालियां।
झूम रहीं बाग में सुम्बुल व गुल की डालियां।
शोख बगल में नाज से खोले था जुल्फें कलिया।
खुश हो गले लिपट लिपट देता था मीठी गालियां।
हम भी नशे में मस्त थे साकी की पीके प्यालियाँ।
जल के फलक ने इसमें हा आफतें ला यह डालिया।
सुबह हुई गजर बजा फूल खिले हवा चली।
यार बगल से उठ गया, जी टी की जी में रह गई।

सामंती जीवन के चित्रण के साथ ही सामाजिक-आर्थिक जीवन के विविध पहलुओं भी नज़ीर अपन प्रकृति संबंधी संवेदना में संबद्ध कर प्रस्तुत करते हैं। इस दृष्टि उनकी बरसात से संबंधित कविताओं की विविधता रेखांकित करने योग्य है।

जब वे बरसात का वर्णन करते हैं तो एक ओर उनमें उल्लास की भावनाएँ दिखाई देती हैं तो दुसरी ओर संसाधन विहिन लोगों का कष्टप्रद जीवन भी। उनमें सूक्ष्म अवलोकन क्षमता है और जब वे प्रकृति के किसी एक आयाम का वर्णन करते हैं तो उससे संबंधी प्रकृति की हर क्रीड़ा को समेटते-वर्णन करते चलते है। बारिश अथवा बरसात के विभिन्न आयामों का नज़ीर की कविताओं में प्रमुखता से वर्णन हुआ है। इस विषय पर उन्होंने 'शबे ऐश (झड़ी)', 'बरसात की फिसलन', 'बरसात का तमाशा', 'बरसात की बहारे', 'बरसात की उमस' आदि कई कविताएँ लिखी हैं। नज़ीर की एक विशेषता उनकी अभिव्यक्ति की सहजता है। उनके वर्णन सहज संप्रशणीय है। सावन में बादलों की घटा छा गई है, बादलों के देवता (राद) मस्ती में गरज रहे हैं, कोयल की कूक सुनाई दे रही है :

सावन के बादलों से फिर आ घटा जो छाई।
बिजली ने अपनी सूरत, फिर आन कर दिखाई।
हो मस्त राद गरजा, कोयल की कूक आई।
बदली ने क्या मजे की रिमझिम झड़ी लगाई
आ यार! चटके देखें बरसात का तमाशा।।

बरसात के अंधेरे में जुगनू की रोशनी आकाश के तारों सी प्रतीत होती है :

सावन की काली रातें और बर्क के इशारे।
जुगनू चमकते फिरते हैं जूं आसमां पे तारे।

बादल हवा के सहारे चारों ओर ठा गए हैं। जंगल के तन पर हरियाली सज गई है। बादल गरज रहे हैं, झीगुंर अपने सुर में गा रहे है; मोर अपनी अवजो से वर्षा की फहारों को बुला रहा है। पपीहे पी-पी कर रहे हैं तथा मेढ़क मानो मल्हार गा रहे हैं :

बादल लगा टकोरें नौबत को गत लगावें।
झींगर झंगार अपनी सुरनाइयां बजावें।
कर शोर मोर बगले, झाड़ियों का मुंह बुलावें।
पी पी करें, पपीहे, मेढ़क मल्हारे गावें।
क्या-क्या बची है, यारो बरसात की बटारें।

दरअसल नज़ीर की दृष्टि की सूक्ष्मता प्रकृति विविधता के अनेकानेक आयाम को देखने वर्णन करने की प्रवृति में है। वे इस सूक्ष्मता का उपयोग किसी किस्म की दार्शनिकता अथवा अमूर्तता के लिए नहीं करते है। उनक प्रकृति संबंधी वर्णन मानवीय अवलोकन की सहज प्रस्तुति है।

नज़ीर की कविताओं में मानवीय जीवन के विभिन्न क्रिया-कलापों बनी रहती है। यह प्रवृत्ति उनकी प्रकृति संबंधी कविताओं में भी गहन रूप से विद्यमान है। मोहम्मद हसन इस विशेषता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, ''प्रकृति के प्रत्येक परिवर्तन में उन्हें जीवन के बदलते

क्षणों की धुनें मिलती है; हरे भरे खेत और घास से भरा खूबसूरत मैदान उन्हें जीवन की आनंदपूर्ण और मखमली बिछावन लगते हैं जो मालिक के द्वारा मनुष्य को दी गई है। ... लेकिन बरसात सबके लिए सुखद नहीं होती, बल्कि वह निर्धन लोगों के अस्तित्व पर प्रश्न बनकर भी आती है। कवि इससे अनभिज्ञ नहीं है, और सामाजिक विषमता का नागदंष उसे झकझोरता है''। प्रकृति का एक ही रूप का साधन-संपन्न तथा सारानीय व्यक्तियों के लिए कैसे अलग-अलग मायने है उसे नज़ीर ने बहुत ही अच्छे ढंग से अभिव्यक्त किया है :

जो इस हवा में यारो दौलत में कुछ बड़े हैं।
है उनके सर पर छतरी, हाथी ऊपर चढ़े हैं।
हमसे गरीब गुरबा कीचड़ में गिर पड़े हैं।
हाथों में जूतियां हैं और पांयचे चढ़े हैं।
क्या-क्या गयी है यारो बरसात की बटारें।

प्रकृति के बहाने सामाजिक-आर्थिक जीवन की समीक्षा के साथ ही सामाजिक जीवन के हास-परिहास के क्षण भी नज़ीर के प्रकृति वर्णन के साथ संबद्ध है। बरसात में लोगों का फिसलना तथा इस स्थिति को देखकर लोगों अनायास हँस पड़ने को भी उन्होंने अपनी कविता में अभिव्यक्त किया है :

आगे दुकां ने नाला है मौज मार चलता।
आलम तरह तरह का आगे से है निकलता ।
कोई छपकता पानी और कोई है फिसलता।
ठट्ठा है और मजा है आबे अनब है ढलता।
आ यार! चलके देखें बरसात का तमाशा।।

प्रकृति के मोहक रूप को जन-जीवन के आर्थिक पक्ष के जोड़ने के साथ ही नज़ीर ने प्रकृति के ऐसे पक्ष का भी वर्णन किया है जो सम्मोहक नहीं है। 'बरसात की उमस' में वे बरसात के दिनों के उमस का संजीव चित्रण करते हैं :

क्या अब्र की गर्मी में घड़ी पहर है उमस।
गर्मी के बढ़ाने की अजब लहर है उमस।
पानी से पसीनों की बड़ी नहर है उमस।
हर बाग में हर दश्त में हर शहर है उमस।
बरसात के मौसम में निपट जहर है उमस।
सब चीज तो अच्छी है पर कहर है उमस।।

12.6 नज़ीर अकबराबादी की कविताओं में धर्म पर एक नया रवैया

सामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि हिंदवी-काव्य परंपरा में धर्म के मसले पर दो अलग-अलग तरह के दृष्टिकोण रहे हैं – विधर्मी और भक्तिमय। एक तरफ तो धर्म को अंधविश्वास, रूढ़िवाद और अतार्किकता का पाशक मानते हुए उसकी लानत मलामत की गई है। दूसरी तरफ उसे श्रद्धा, नैतिकता और भक्ति से जोड़कर उसकी पवित्रता को उजागर किया गया है। दोनों ही दृष्टिकोण हिंदवी परंपरा में काफी महत्वपूर्ण रहे हैं।

जब 18वीं सदी से उर्दू काव्य की शुरूआत हुई तो उसने धर्म पर पूरी तरह से विधर्मी रवैया अपनाया। मीर तकी मीर इसके प्रेरक थे और कालांतर में यह विधर्मी रवैया उर्दू शायरी की मुख्यधारा का एक अभिन्न हिस्सा बन गया। मीर ने लगभग सभी धर्मों को अपना निशाना बनाया :

हम न कहते थे कि मत दैरो-हरम[37] की चाल चल
अब ये दावा[38] हश्र[39] तक शेख़ो बरहमन[40] में रहा।

अर्थात मैंने आपको कहा था कि मंदिर और मस्जिद के रास्ते पर न चलें। सही रास्ता क्या है यह बहस शेख और ब्राह्मण में अंत तक चलता रहेगा।

लेकिन खास तौर पर मीर के निशाने पे आया इस्लाम धर्म। चूँकि वे खुद मुसलमान थे इसलिए उन्होंने अपने ही धर्म पर ज्यादा कड़ा हमला किया। अपने एक शेर में तो उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि उन्होंने इस्लाम छोड़ दिया है, माथे पर तिलक धारण कर लिया है और वे मंदिर में बैठ गए हैं। यानी कि इस्लाम धर्म छोड़कर हिंदू बन गए हैं :

मीर के दीनों[41] महजब को तुम पूछते क्या हो उनने तो
कश्का[42] खेंचा दैर[43] में बैठा कब का तर्क[44] इस्लाम किया।

अर्थात मीर के धर्म का क्या पूछना है। उसने माथे पर तिलक लगा लिया है और मंदिर में जाकर बैठ गया है। इस्लाम तो उसने कब का छोड़ दिया।

इस तरह से उर्दू की मुख्यधारा ने विधर्मी रवैया तो अपनाया ही, साथ ही अलग-अलग मतों (जैसे इस्लाम और हिंदू धर्म) के बीच फर्क को भी स्पष्ट किया। मीर हिंदू तभी बनते हैं जब इस्लाम को छोड़ देते हैं। मानो हिंदू और मुसलमान दोनो साथ-साथ बने रहना संभव नहीं।

---

[37] मंदिर-मस्जिद
[38] शास्त्रार्थ के संदर्भ में
[39] प्रलय
[40] शेख और ब्राह्मण
[41] धर्म
[42] तिलक
[43] मन्दिर
[44] छोड़ना

ऐसा भी लगने लगा कि धर्म के मसले पर उपलब्ध दृष्टिकोणों का दायरा इन्हीं दोनो रवैयों (विधर्मी और भक्तिमय) तक सीमित है और इनके बाहर कोई नया रवैया संभव नहीं है।

नज़ीर की कविता की एक खास विशशता यह है कि वे न सिर्फ धर्म के मसले पर एक नया रवैया सामने लाते हैं बल्कि धर्म पर समझ के दायरे को और अधिक विस्तार देते हैं। धर्म और उसके विभिन्न पहलुओं पर नज़ीर ने कई कविताएँ लिखीं। उनकी कविताओं में ताज़गी के साथ एक नया दर्शन भी है। धर्म पर नज़ीर की कविताएँ धार्मिक नहीं है, लेकिन वे धर्म-विरोधी भी नहीं है। नज़ीर धर्म को पवित्रता और अपवित्रता के दायरे में रखकर नहीं देखते। श्रद्धा और आस्था का माद्दा भी उनमें कम ही है। लेकिन वे धर्म को मानव जीवन के एक अभिन्न हिस्से के रूप में देखते हैं। वह धर्म को एक पारलौकिक वस्तु न मानकर मानव जीवन से अभिन्न रूप से जुड़ी एक शय के रूप में देखते हैं।

नज़ीर के तसव्वुर में धर्म एक उत्सव के रूप में सामने आता है। उत्सव, तीज-त्योहार, उसके साथ जुड़ी गतिविधियाँ, सामूहिक उत्साह, खुशी मनाना, खाना-पीना और आपस में हिल-मिलकर रहना, यही सब नज़ीर की धर्म पर समझ का हिस्सा है। वे लगातार धर्म को पवित्रता के दायरे से बाहर निकालकर सामूहिक उत्साह के दायरे में लाते हुए दिखते हैं। नजीर की निगाह में धर्म संस्कृति का हिस्सा है या यूँ समझिए कि संस्कृति ही है।

चूँकि नजीर धर्म को एक उत्सव के रूप में देखते हैं इसलिए उनका ध्यान सबसे अधिक आकृष्ट किया होली ने। उन्होंने बीस से भी अधिक कविताएँ होली पर लिखीं। होली के बहारें, मज़े, किलकारियाँ, ठहाके, रंगो की मस्ती छेड़-छाड़, नाच-गाना, नोक-झोंक, लड़ाई झगड़ा, इन सभी से नजीर की कविताएँ सराबोर है :

देखो जिधर उधर को है सैर और तमाशा।
कुछ नाचने के खटके कुछ राग रंग ठहरा।।
ठ्ठ्ठे हँसी के चर्चे एशो तरब का चर्चा।
सौ सौ बहारें चुहलें आई नजर अहा ठा।।
रंग औ गुलाल पड़के रंगी हुई गलियाँ।
दिखलाई अपनी क्या-क्या होली ने रंग रलियाँ।।

इस्लामी त्योहारों पर नज़ीर ने अपेक्षाकृत कम लिखा है। लेकिन ईद पर लिखी उनकी एक कविता ईद के धार्मिक पारलौकिक पहलू की अपेक्षा उसके सांस्कृतिक तथा उत्सवमय पहलू को ही अधिक उजागर करती है :

है आबिदों[45] को ताअतो तजरीद[46] की खुशी
और ज़ाहिदों[47] को जुहद[48] के तमहीद[49] की खुशी
रिंद[50] आशिकों को सौ उम्मीद की खुशी
कुछ दिलवरों[51] के वस्ल[52] की कुछ दीद[53] की खुशी
ऐसी न शब बरात[54] न बकरीद[55] की खुशी
जैसी हर एक दिल को है इस ईद की खुशी।

अर्थात उपासना करने वालों को उपासना करने की खुशी है। कर्मकांडियों को अनुष्ठान पालन की खुशी है। मदिरा पीने वालों को उम्मीद की खुशी है। प्रेमियों को आपस में मिलने और

[45] धर्म अनुयायी
[46] आराधाना
[47] कर्मकांडियों
[48] अनुष्ठान
[49] पालन
[50] मदिरा-प्रेमी
[51] प्रेमी
[52] मिलन
[53] दर्शन
[54] और
[55] इस्लाम धर्म के त्योहार

एक दूसरे को देखने की खुशी है। ऐसी खुशी तो शब-ए-बारात और बकरीद में भी नहीं होती जैसी खुशी हर एक के दिल में ईद-उल-फित्र के आने से होती है।

धर्म पर नजीर के इस रवैये का एक खास महत्व है। ऐतिहासिक रूप से धर्म पर जो सोच-समझ बनी है उसकी कुछ सीमाएँ रही हैं। जिस सोच ने धर्म को श्रद्धा और आस्था के दायरे में रखा, उस सोच में धर्म की आलोचना की क्षमता नहीं थी। और यह इस सोच की एक सीमा थी। लेकिन जिस सोच ने धर्म की आलोचना की उसकी भी अपनी सीमाएँ थीं। धर्म-विरोधी दृष्टिकोण ने या तो अंधविश्वास और कठमुल्लेपन के आधार पर इसकी आलोचना की या फिर इसके अतार्किक पहलू को लेकर या आधुनिक तर्कवादी, वैज्ञानिक नज़रिये से धर्म की आलोचना हुई। लेकिन पारंपरिक विधर्मी नज़रिये और आधुनिक सेक्युलर नज़रिये, दोनो ने ही इस विचार को अनदेखा कर दिया कि धर्म का लोगों के जीवन में एक खास महत्व है। वह एक अजनबी और दुराग्रही दुनिया में लोगों को सहारा देता है और संकट के क्षणों में, अस्थायी तौर पर ही सही, एक मनोवैज्ञानिक राहत भी प्रदान करता है। एक शुष्क और नीरस दुनिया में वह तरह-तरह के रंग भर देता है और एक सांस्कृतिक संबल की तरह काम करता है। कोई भी सोच या विचारधारा जो सही मायने में जनोन्मुखी है, धर्म की उपेक्षा नहीं कर सकती। एक बेमानी जीवन के लिए वह मायने देता है। रंगहीन जीवन में रंग भरता है। धुरीहीन, अलग-थलग अपनी जड़ो से कटे हुए मानव जीवन को आस्था का आधार देता है।

धर्म के इन विभिन्न पहलुओं में जिस पहलू पर नज़ीर ने जोर डाला वह था धर्म का उत्सवमय पक्ष। उन्होंने उत्सवों, मेलों और तमाम रीति रिवाजों पर अपनी कविता लिखी। दूसरे शब्दों

में उन्होंने धर्म को एक ऐसे प्रेरणा-स्रोत की तरह देखा जो तीज-त्योहारों के माध्यम से एक नीरस जिंदगी में रस घोलता है और लोगों को जीने का सहारा भी देता है।

धर्म पर नज़ीर के रवैये का एक और महत्वपूर्ण पहलू है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, मुख्यधारा उर्दू का नज़रिया विधर्मी होने के साथ-साथ विभिन्न मतों के बीच फर्क पर भी बहुत सजग था। इस्लाम, ईसाइयत, हिंदू धर्म और पारसी धर्म एक दूसरे से भिन्न हैं, यह विचार उर्दू की मुख्यधारा में काफी स्पष्ट है। इसके कई उदाहरण मीर की शायरी में तो मिलते ही हैं, 18वीं सदी से 20वीं सदी के कई उर्दू शायरों ने अलग-अलग धार्मिक मतों के भिन्न-भिन्न स्वरूप को स्वीकारा। इसके उदाहरण मीर की शायरी से देखिये :

दरे काबा[56] पे कुफ्र[57] बकता है मीर
मुसल्मां नहीं वह कुहन गब्र[58] है।

काबे पर बैठकर मीर धर्म विरोधी बातें बोल रहा है। ऐसा इसलिए है कि वह मुसलमान न होकर प्राचीन ईरान के अग्नि पूजक धर्म का अनुयायी है।

मीर भी दैर[59] के लोगों हीं की सी कहने लगा
कुछ खुदा लगती[60] भी कह लेता जो मुसल्मां होता।

मीर भी मंदिर वालों की (यानी हिन्दुओं की) तरह ही बोलने लगा है। अगर वह मुसलमान होता तो वह सच्ची बात बोलता।

याराने दैरो काबा[61] दोनो बुला रहे हैं
अब देखो मीर अपना जाना किधर बने है।

---

[56] काबा के दर पर
[57] धर्म विरोधी विमर्श
[58] प्राचीन ईरान में प्रचलित पारसी धर्म
[59] मन्दिर
[60] सत्य
[61] हिंदु और इस्लामी प्रवर्तक

मंदिर और काबा दोनों जगह से लोग (यानी हिंदु और मुस्लिम प्रचारक) मुझे बुला रहे हैं। अब देखो मैं कहाँ जाता हूँ।

इन सबका मतलब काफी स्पष्ट है। अलग-अलग धर्मों के अलग-अलग रास्ते हैं। अब यह हर व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह कौन-सा रास्ता चुने। लेकिन चुनाव करना निश्चित है। चूँकि सभी रास्ते अलग हैं, इसलिए सभी रास्तों को एक साथ नहीं चुना जा सकता। नज़ीर का नज़रिया इसके बिल्कुल विपरीत है। वे धर्म को एक शास्त्रीय या क्लसिकीय चश्मे से नहीं देखते।

उनकी निगाह में धर्म का महत्व एक धर्म सिद्धांत के रूप में नहीं बल्कि लोक संस्कृति के एक अभिन्न हिस्से के रूप में है। इस तरह के प्रस्थान बिंदु से देखने पर उन्हें विभिन्न धर्मो के बीच फर्क नही दिखते, बल्कि सभी धर्मो के बीच एक आधारभूत और बुनियादी समानता दिखाई देती है। इस समानता का लहजा उनके द्वारा इस्तेमाल किए गए प्रतीकों और बिंबो में काफी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उदाहरण के लिए अपनी प्रसिद्ध कविता 'रोटियाँ' में वे भजन और अल्लाह जैसे प्रतीकों का इस्तेमाल ऐसे करते हैं जैसे वे एक अविरल निरंतरता का हिस्सा हों :

रोटी न पेट मे हो तो फिर कुछ जतन न हो
मेले की सैर ख्वाहिशे बागों चमन न हो
भूखे गरीब दिल की खुदा से लगन न हो
सच है कहा किसी ने कि भूखे भजन न हो
अल्लाह की भी याद दिलाती है रोटियां।
जब आदमी के पेट में आती हैं रोटियां
फूली नहीं बदन में समाती हैं रोटियां।

इसी तरह से नज़ीर ने एक कविता रक्षाबंधन के त्योहार पर लिखी। शायद उस समय यह रीति-रिवाज रहा हो कि संरक्षण माँगने के प्रतीक के रूप में दक्षिणी (दक्षिणा लेने वाले) ब्राह्मण कुलीनों के पास राखी बाँधने जाते हो। इसी प्रथा को ध्यान में रखते हुए नजीर ने स्वयं को एक ब्राह्मण के रूप में प्रस्तुत किया है :

पहन जुन्नार[62] और क़श्का[63] लगा माथे उपर वारे
नज़ीर आया है बामन[64] बनके राखी बांधने प्यारे
बंधा लो उससे तुम हँसकर अब इस त्योहार की राखी।

अर्थात नज़ीर जनेऊ पहनकर और माथे पर तिलक लगाकर, यानी ब्राह्मण बनकर, राखी बाँधने आया है। अब हँसकर उससे इस त्योहार की राखी बँधवा लो।

मीर के हिंदू बनने में और नज़ीर के ब्राह्मण बनने मे क्या फर्क है, यह काफी स्पष्ट है। इसी नज़रिये का एक और उदाहरण प्रस्तुत है, जो नजीर की कविता 'ईश्वर वंदना' से लिया गया है :

तू सबका खुदा, सब तुझपे फिदा अल्लाहोगनी अल्लाहोगनी
ऐ किशन कन्हैया नंदलला अल्लाहोगनी अल्लाहोगनी
सूरत में नबी[65] सीरत[66] में खुदा, ऐ सल्ले अलाह अल्लाहोगनी
तालिब[67] है तेरी रहमत[68] का बंदा ये नाचीज़ 'नजीर' तेरा
तू बहरें करम[69] है नंदलला, अल्लाहोगनी अल्लाहोगनी

ब्रज की पृष्ठभूमि के कारण नजीर ने कृष्ण पर तथा उनके जीवन के कई प्रसंगों पर बहुत कुछ लिखा है। उनकी कविताओं में कृष्ण भगवान की लीलाओं के साथ कवि की नज़दीकी

[62] जनेऊ
[63] तिलक
[64] ब्राह्मण
[65] पैगम्बर
[66] स्वभाव
[67] शिष्य
[68] मेहरबानी
[69] दया का सागर

और एक अंतरंग रिश्ता काफी स्पष्ट है। कृष्ण पर कविताओं में नज़ीर बाहरी निरीक्षक के बजाए एक प्रतिभागी के रूप में ज्यादा नज़र आते हैं। 'काली-दहन' की घटना पर लिखी गई कविता से एक उदाहरण देखिए :

तारीफ करूं मै अब क्या-क्या उस मुरली अधर बजय्या की
नित सेवा कुंज फिरय्या की और बन बन गऊ चरय्या की
गोपाल बिहारी बनवारी दुख-हरना मेहर करय्या की
गिरधारी सुंदर श्याम बरन और हलधर जू के भय्या की
यह लीला है उस नंदललन मनमोहक जसुमति छैया की
रख ध्यान सुनो दंडौत करो जय बोलो किशन कन्हैया की।

सारांश के तौर पर धर्म पर नज़ीर की दृष्टि को लेकर दो बातें कही जा सकती हैं। एक, धर्म के ऊपर दो मुख्य नज़रिये रहे हैं – विधर्मी और भक्तिमय। विधर्मी नज़रिया अपने बुनियादी स्वरूप में धर्म-विरोधी रहा है। भक्तिमय समझ धर्म के भीतर से ही निकलती है इसलिए इसमें धर्म के प्रति एक स्वतंत्र और बाहरी मूल्यांकन की क्षमता नहीं रहती है। दोनों ही दृष्टिकोणों की अपनी सीमाएँ और कमजोरियाँ है। इन दोनों से अलग और विपरीत नज़ीर अपनी कविता के माध्यम से एक नई दृष्टि प्रदान करते हैं। वे न तो धर्म की लानत-मलामत करते हैं न ही उसकी आत्म-छवि को स्वीकार करते हुए उसकी पवित्रीकृत छवि का महिमामंडन करते हैं। वे धर्म को लोक जीवन ओर लोक-संस्कृति से जुड़ी एक ऐसी शय के रूप में देखते हैं जो नीरस जीवन में रस भरती है। उनके चित्रण में धर्म की पावन ऊँचाइयाँ नहीं हैं बल्कि जन-जीवन की चहल-पहल, सहभागिता और शोर-शराबा है। वे मुख्य रूप से धर्म को एक उत्सव के रूप में देखते हैं। इस तरह से वे धर्म पर एक नया नज़रिया प्रदान करते हैं। दो, समाजशास्त्रियों ने धर्म के दो अलग रूप बताए हैं। पहली तस्वीर है – क्लासिकीय और धर्म

ग्रंथों पर आधारित। इस तस्वीर में हर धर्म का एक अलग स्वरूप और कलेवर है। चूँकि अलग धर्मों के अपने अलग धर्मग्रंथ हैं, इसलिए उन धर्मग्रंथों से निकलती हुई छवि भी अलग है। अपने क्लासिकीय स्वरूप में सभी विशाल धर्म (इस्लाम, ईसाइयत, हिंदू धर्म) एक-दूसरे से अलग हैं। दूसरी तस्वीर है – रीति रिवाज पर आधारित। इस तस्वीर में विभिन्न धर्मों के भिन्न स्वरूप कुछ धूमिल पड़ जाते हैं और उनकी बुनियादी समानताएँ उभर कर सामने आती है। नज़ीर अपने काव्य में धर्म के इस लोक-रूप को आगे रखते हैं। इस तरह की प्रस्तुति में विभिन्न धर्मों के मतभेद दिखाई नहीं पड़ते, उनकी एकता और अविरल निरंतरता दिखाई पड़ती है। नजीर का काव्य इस तरह के सुगंधों से भरा पड़ा है।

एक व्यापक समाजशास्त्रीय नज़रिया

समाजशास्त्रीय नज़रिये से अभिप्राय है – अपने आस-पास की दुनिया का निष्पक्ष वर्णन। ऐसा वर्णन कर पाने के लिए एक निरीक्षण क्षमता का होना बहुत ज़रूरी है। साथ ही अपने आस-पास की दुनिया की चापलूसी या अत्यधिक निंदा के लोभ से बचना भी। नज़ीर में ये दोनों ही खूबियाँ (निष्पक्ष बयानी तथा निंदा और चापलूसी से लोभ संवरण) प्रचुर मात्रा में मिलती हैं और उनके साहित्य को निराला बना देती है।

नज़ीर के समय तक के कवियों की दृष्टि धर्म और दरबार तक ही सीमित थी। वर्णन चाहे वीरता का हो, या प्रेम का या भक्ति का, कवियों का फलक मूल रूप से इन्हीं दो धड़ों तक सीमित था। इसके साथ ही एक जीवन दर्शन भी था जो काफी अमूर्त स्तर पर वर्णित किया जाता था। नज़ीर ने इस फलक का इस तरह से विस्तार किया कि उसमें समान्य जन, उनका जीवन, समस्याएँ और जीवन शैली, सभी कुछ आ गए। उनकी कविता में विशिष्ट

जीवन की भव्यता नहीं है। सामान्य जीवन की रवानी है। साथ ही मानव जीवन में निहित संभावनाओं का विस्तृत वर्णन भी है।

नज़ीर की कविता में समाज के उन तबकों का जिक्र है जिन पर कम ही लिखा जाता था। जैसे सामान्य लोग, फेरी लगाने वाले, सब्जी बेचने वाले, वेश्याएँ इत्यादि। उनके वर्णन में किसी भी तरह की बाहरी सहानुभूति और दया का पूरी तरह अभाव है। खास तौर पर वेश्याओं पर जिस तरह से नज़ीर ने लिखा वैसे किसी और ने नहीं लिखा। लगभग डेढ़ सदी के बाद वेश्याओं पर फिर से नज़र गई उर्दू के प्रसिद्ध लेखक सअद्त हसन मंटो की। इसमें कोई शक नहीं कि समाज के उपेक्षित तबकों पर लिखने की परंपरा की शुरूआत नज़ीर ने ही की।

नज़ीर के विषय-वस्तु के चयन में सामान्य जन के साथ-साथ वे सामाजिक परिस्थितियाँ भी थी जिन्होंने लोगों की जिंदगियों पर असर डाला। इसमें निर्धनता प्रमुख थी। नज़ीर ने गरीबी और गरीबी की चपेट में आए मानव जीवन पर बहुत लिखा। इस संदर्भ में उनकी कविताएँ 'कौड़ियाँ', 'पैसा', 'रोटियाँ', 'चपाती' काफी महत्वपूर्ण हैं। गरीबी पर लिखते समय नज़ीर की कलम में न तो वितृष्णा है, न ही इस गरीबी के लिए जिम्मेदार लोगों की निंदा। नज़ीर के वर्णन में गरीबी न बुरी है, न अच्छी। वह सिर्फ है। नज़ीर गरीबी को मानव जीवन की एक परिस्थिति की तरह देखते हैं। वह न तो एक विपदा है न मुसीबत है जिसने यकायक लोगों को अपनी चपेट में ले लिया है। और न ही वह ऐसी समाजिक बीमारी है जिसका इलाज किसी के पास हो। लेकिन वह सर्वव्यापी है और इंसानी जीवन का अभिन्न हिस्सा है। यहाँ पर महत्वपूर्ण बात यह है कि सर्वव्यापी होने के बावजूद भी नज़ीर उसे एक निस्पृह भाव से देख पाते हैं। जो कुछ सर्वव्यापी होता है वह हमें आसानी से दृष्टिगोचर नहीं होता। इसीलिए

प्राग् आधुनिक काल में गरीबी के विषय-वस्तु पर पर दुनिया में कहीं भी बहुत ज्यादा नहीं लिखा गया। नज़ीर निर्धनता के व्यापक साम्राज्य का हिस्सा होते हुए भी, स्वयं को इससे बाहर निकालते हुए उस पर एक व्यापक दृष्टि डालते हैं, यह नज़ीर की समाज शास्त्रीय नज़र का एक विलक्षण उदाहरण है।

12.7 नज़ीर अकबराबादी की भाषा

नजीर का साहित्य खड़ी बोली में लिखा गया है। खड़ी बोली मध्यकाल से दिल्ली और उसके आस-पास के इलाकों में बोली जाती थी। इसे खड़ी बोली का नाम 19वीं सदी में ही दिया गया। मध्यकाल में इसमें छिट-पुट काव्य ही लिखा जाता था। 18वीं-19वीं सदी में खड़ी बोली साहित्य ने दो अलग-अलग शैलियों को अपनाया जिन्हें उर्दू और हिंदी का नाम दिया गया। चूँकि 'हिंदी' शब्द का इतिहास काफी पुराना था इसलिये इसे पुरानी हिंदी से अलग करने के लिए खड़ी बोली हिंदी भी कहा गया। 19वीं सदी में ही हिंदी और उर्दू के मध्य राजनीतिक और साहित्यिक प्रतिद्वंदिता का उभार हुआ। नजीर की भाषा को समझने के लिए इस वैचारिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है।

आप जानकारी प्राप्त कर चुके हैं कि शुरू में उर्दू और हिंदी दोनों के ही पक्षधरों ने नज़ीर को अनदेखा कर दिया था। उर्दू की मुख्यधारा का एक सामंती कलेवर था जिसमें नज़ीर फिट नहीं बैठते थे। आधुनिक हिंदी ने भी संभवतः अपने शुद्धतावादी नजरिये के कारण नज़ीर को नही अपनाया। नज़ीर के इस शुरूआती बहिष्कार से एक नया सवाल खड़ा हुआ। अगर नजीर हिंदी और उर्दू दोनो से बाहर हैं, तो उनकी भाषा क्या है? खड़ी बोली को 19वीं सदी

में एक अलग भाषा न मानकर उसे एक 'बोली' के दायरे में रख दिया गया था। नज़ीर की सही भाषा की तलाश में हमें भारत के भाषाई परिदृश्य पर एक निगाह डालनी होगी।

किसी भी एक साहित्य के लिए एक भाषा और एक भाषा के लिए एक लिपि, यह एक आधुनिकतावादी आग्रह का हिस्सा है। प्राग् आधुनिक साहित्यिक और भाषाई यथार्थ इसके बिल्कुल विपरीत है। मध्यकाल में किसी भी साहित्य का बहुभाषी होना एक सामान्य बात थी। अधिकतर कवि और साहित्यकार एक से अधिक भाषा का इस्तेमाल करते थे। मीर, गालिब और इकबाल ने फारसी और उर्दू दोनों में लिखा। कुछ फारसी में और कुछ उर्दू में। लेकिन काफी साहित्य ऐसा भी था जिसमें एक ही कृति में अलग-अलग भाषाओं का इस्तेमाल किया जाता था। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में अवधी और संस्कृत दोनों का इस्तेमाल किया। 19वीं सदी में प्रसिद्ध बंगला लेखक बंकिमचंद्र ने अपना ऐतिहासिक उपन्यास 'आनंद मठ' बंगला में लिखा लेकिन उसी में कुछ गीत संस्कृत में भी लिखे।

बहुभाषी साहित्य की यह प्रवृत्ति अपने चरम पर देखने को मिलती है अमीर खुसरो (13वीं-14वीं सदी) के साहित्य में, जिसमें उन्होंने अपने छंद की एक ही पंक्ति में फारसी और ब्रज दोनों का इस्तेमाल किया। उदाहरण देखिये :

जिहाले मिस्की मकुल तगा फुल[70] [फारसी] दुराय नैना बनाय बतियां [ब्रज]
कि ताबे हिज्रां न दारम ए जां[71] [फारसी] न लेओ काहे लगाय छतियां [ब्रज]

यह निश्चित रूप से साहित्य में एक नया प्रयोग था।

[70] मुझ ग़रीब और मजबूर की उपेक्षा मत कीजिए।
[71] विरह की अग्नि मुझसे बरदाश्त नहीं होती।

अमीर खुसरों ने अपने गैर-फारसी साहित्य की भाषा और उस समय की प्रचलित भाषा को नाम दिया हिंदवी, अथवा हिंदुई या हिंदी। कालांतर में हिंदवी से अभिप्राय बना देश के काफी बड़े हिस्से (उत्तर, मध्य, पश्चिम, दक्कन) में सृजन होने वाले साहित्य से। हिंदवी इस तरह से एक भाषा न होकर एक विशाल भाषाई-सागर थी जिसमें विभिन्न भाषायी नदियाँ आकर मिलती थीं।

18वीं और 19वीं सदियों के आते-आते यह भाषाई और साहित्यिक सागर सूखने लगा था। इस सूखते सागर की ऊर्जा से जन्म हुआ दो आधुनिक भाषाओं - उर्दू और हिंदी का। दोनों – उर्दू और हिंदी इसी हिंदवी के विरासत का हिस्सा थीं। 18वीं सदी के बाद उर्दू में काफी तबदीलियाँ आईं। वह हिंदवी से दूर हुई और फारसी के काफी नज़दीक आई। हिंदवी से दूर होने के कारण वह स्थानीय भाषाओं और बोलियों से भी काफी कट गई। इसके कलेवर, लहजा, माहौल, बिंब और प्रतीक, सभी फारसीमय हो गए। 19वीं सदी तक आते-आते उर्दू की मुख्यधारा का साहित्य काफी नियमबद्ध हो गया। उसमें नियम और अनुशासन अधिक तथा स्वच्छंदता कम हो गई। भाषा की रवानी पर भी असर आया। दूसरी तरफ हिंदी संस्कृत के नज़दीक आई और हिंदवी की साझी विरासत से दूर हुई।

नज़ीर की भाषा सतही तौर पर हिंदी और उर्दू जैसी लगती है, लेकिन इन दोनों से काफी अलग है। नजीर की भाषा में रवानी और स्वच्छंदता है। वह नियम के बंधनों से मुक्त है और समावेशी तथा बहुआयामी है। उसमें मध्यकालीन बहुभाषाई जज़्बा भी है। उसके रूपक और प्रतीको में स्थानीयता है। नजीर फारसी के विद्वान थे लेकिन प्रतीक और बिंब चयन में उन्होंने फारसी साहित्य का इस्तेमाल बिल्कुल नहीं किया। उनके काव्य का रूप-रंग पूरी तरह से

देसी है। लेकिन इस देसी रूप-रंग के बावजूद उनका काव्य सभी स्थानीय तथा क्षेत्रीय सीमाओं को लाँघकर सार्वभौमिकता का जामा ओढ़ता है।

नज़ीर की भाषा और साहित्य की एक और विवशता यह है कि उसमें परिपक्वता है, जटिलता नहीं। गंभीर और दुरूह विचारों का प्रेषण काफी सहजता के साथ किया गया है। नजीर की भाषा में बचपन की सरलता है जो विचारों की प्रौढ़ता को अपने ऊपर हावी नहीं होने देती। इस तरह से नजीर के काव्य में काफी जटिल और दुरूह विचार काफी सहजता और आसानी से व्यक्त हो जाते हैं।

बोध प्रश्न

4. नज़ीर के प्रकृति का चित्रण की प्रमुख विशेषताएँ क्या-क्या हैं? (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

   _____

   _____

   _____

   _____

   _____

5. नज़ीर की कविताओं में अभिव्यक्त लोक जीवन के प्रमुख पक्षों का उल्लेख कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

_____

_____

_____

_____

_____

6. नज़ीर के धार्मिक दृष्टिकोण की विशिष्टताओं का सोदाहरण उल्लेख कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

12.8 'रोटियाँ' कविता का आस्वादन

- रोटी न पेट में हो .....

संदर्भ : प्रस्तुत पद्यांश नज़ीर अकबराबादी की कविता 'रोटियाँ' से ली गई है।

व्याख्या

प्रस्तुत पंक्तियों में नज़ीर अकबराबादी ने भूख और भोजन का बहुत ही यर्थाथवादी ढंग से वर्णन किया है। इस संसार सारे क्रिया–कलाप तभी संचालित किया जा सकता है जब मनुष्य का पेट भरा हुआ है। पेट की दुश्चिंता से मुक्त व्यक्ति ही सैर सपाटे की बातें सोच सकता है। बाग–बगीचे के सौंदर्य का अवलोकन एवं सराहना तभी कर सकता है जब वह भूखा न हो। जब व्यक्ति चिंताओं से मुक्त होता है तभी उसे प्रकृति के सौंदर्य में भी आनंद मिलता है। यहाँ तक की वह ईश्वर की अराधना अथवा अल्लाट की इबादत तभी कर पाएगा जब उसे पेट की चिंता न होगी। नजरी समाज में प्रचलित उस लोकोक्ति को सही मानते है जिसमें भूखे व्यक्ति के भजन न कर पाने की असमर्थता व्यक्त की गई है। नज़ीर का मानना है कि दरअसल व्यक्ति जब रोटी अर्थात अपनी तमाम जरूरतों से मुक्त हो जाता है तभी ईश्वर अथवा अल्लाह के प्रति समर्पित हो पाता है।

विषेष

(I) इस कविता में नज़ीर का दृष्टिकोण यथार्थवादी है।

(II) यहाँ रोटी का समान्य अर्थ भोजन से है जबकि विशेष रूप से इसका अभिप्राय मनुष्य की तमाम जरूरतों से है।

(III) भाषा सहज और संप्रेषणीय है।

12.9 सारांश

- नज़ीर के साहित्य को एक खास काल और स्थान के संदर्भ में देखना जरूरी है। साथ ही नज़ीर के साहित्य में बहुत से ऐसे तत्व मौजूद हैं जिन्हें समझने के लिए काल और स्थान को पार करना जरूरी है। नज़ीर के साहित्य में एक सार्वभौमिकता है जिसे किसी खास संदर्भ के दायरे में रखकर देखना संभव नहीं।
- मध्यकालीन साहित्य सृजन में दो तत्व बहुत महत्वपूर्ण थे- सामंती जीवन और धर्मगत क्रिया-कलाप। अकसर सृजित साहित्य की पृष्ठभूमि इन्हीं से निर्धारित होती। साहित्य के लिए संरक्षण भी यहीं से आता। इस संरक्षणतंत्र के परिणामस्वरूप साहित्यकार की दृष्टि सामंती या धार्मिक जीवन तक ही सीमित रहती। आम लोग और उनके जीवन पर साहित्य की नज़र कम ही जाती थी। नज़ीर की एक विशशता यह थी कि वे किसी भी संरक्षणतंत्र का हिस्सा नहीं थे। उन्होंने दरबारी कवि बनना स्वीकार नही किया। वे जनता के कवि थे और सामान्य जनता ही उनके साहित्य के सरोकार के केंद्र में थी।
- नज़ीर की भाषा भी काफी अलग है। वह 19वीं सदी में गढ़ी जाने वाली औपचारिक और टकसाली, उर्दू और खड़ी बोली हिंदी से काफी अलग है। नज़ीर की भाषा उस हिंदवी से काफी मिलती-जुलती है जो एक विशाल भाषाई महासागर के रूप में देश के अधिकांश हिस्सों में 12वी से 18वी शताब्दी के बीच प्रचलित थी। नज़ीर को इसी हिंदवी परंपरा के एक विशिष्ट साहित्यिक प्रतिनिधि के रूप में देखा जाना चाहिए।
- नज़ीर अपने समय के लोकप्रिय कवि थे। लेकिन उनके बाद की पीढ़ी ने उन्हें अनदेखा कर दिया। 19वीं सदी के अंत तक उर्दू और हिंदी के मध्य राजनीतिक और साहित्यिक

विभाजन हो गया। दोनों ही साहित्यों के जो इतिहास लिखे गए उनमें नज़ीर का कहीं भी ज़िक्र नही था। नज़ीर पुनर्प्रतिष्ठित हुए बीसवीं सदी के दूसरे चतुर्थ में जब उनकी गणना दोनों ही भाषाओं के महाकवियों में होने लगी। प्रसिद्ध रंगकर्मी हबीब तनवीर ने 1950 के दशक में नज़ीर के जीवन पर आधारित नाटक 'आगरा बाज़ार' का मंचन करके नज़ीर को और अधिक लोकप्रिय बनाया।

- नज़ीर की एक विशश कविता 'आदमीनामा' का खास महत्व है। 'आदमीनामा' ने फारसी से शुरू हुई 'नामा' परंपरा को एक नया आयाम दिया। 'नामा' साहित्य मुख्य रूप से राजाओं महाराजाओं के बारे में लिखा जाता था जिसमें राजाओं का महिमामंडन होता था। नज़ीर ने इसके विपरीत 'आदमीनाम' लिखा और स्थापित 'नामा' परंपरा को उलट कर रख दिया। 'आदमीनामा' में नज़ीर ने बादशाह और फकीर दोनो को एक ही श्रेणी में रख दिया क्योंकि दोनो ही 'आदमी' हैं और आदमीयत के दायरे के भीतर हैं।
- इसी तरह से नज़ीर ने एक और स्थापित साहित्यिक विधा 'शहर आशोब' को भी एक नया आयाम दिया। 'शहर-आशोब' में शहर की बरबादी का चित्रण होता है। लेकिन अकसर उर्दू में लिखे 'शहर-आशोब' में राजाओं या सामंतों पर आयी बरबादी का चित्रण अधिक होता था। नजीर ने भी 'शहर-आशोब' लिखा लेकिन उनकी निगाह राजाओं अैर सामंतो पर न जाकर उन तमाम दूकानदारों तथा अन्य पेशेवालों पर गई जिनके जीवन-यापन पर आगरे की बरबादी से असर पड़ा। नजीर के शहर-आशोब में आगरा शहर और आगरे की जनता से नजीर का जुड़ाव और अंतरंगता काफी स्पष्ट रूप से सामने आती है।

- नज़ीर ने धार्मिक कविताएँ भी लिखी, लेकिन उनकी धार्मिक कविताओं का रूप-रंग उस समय के मुख्यधारा नज़रिये से काफी अलग है। नज़ीर का नज़रिया न तो धर्म-विरोधी है और न ही भक्तिमय। वे न तो धर्म की आलोचना करते हैं और न ही उसका पवित्रीकरण। इसके विपरीत वे धर्म को लोगों की जिंदगी से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई एक ऐसी शय के रूप में देखते हैं जो लोगों की नीरस जिंदगी में रस भरती है। नज़ीर धर्म को एक उत्सव के रूप में देखते हैं जिसमें लोगो की भागीदारी और चहल पहल रहती है। नज़ीर ने धर्मों को उसके क्लासिकीय रूप में न देखकर रीति रिवाज के आधार पर समझा। ऐसी समझ में सभी धर्मों की बुनियादी समानताएँ सामने आई न कि उनके मतभेद। नज़ीर काफी सहज रूप से सभी धर्मों का वर्णन इस तरह से करते हैं कि सारे धर्म एक दूसरे से जुड़े हुए दिखाई पड़ते हैं।
- नज़ीर के साहित्य के केंद्र में सामान्य जनता है और उसके दुःख दर्द हैं। नज़ीर के साहित्य में एक स्थानीय जुड़ाव है लेकिन स्थान और क्षेत्र की सभी सीमाओं को लाँघते हुए एक सार्वभौमिकता भी है। नज़ीर के साहित्य में (और उनकी भाषा में) एक परिपक्वता है लेकिन जटिलता नहीं। उसमें बचपन की सरलता भी है और प्रौढ़ता की परिपक्वता भी। यही सब विशशताएँ नज़ीर को एक अनूठा कवि साबित करती है।

12.10 शब्दावली

फलसफा – तर्कविद्या,ज्ञान

दायरा – काम या अधिकार का क्षेत्र

तसव्वुर – विचार,ख्याल,कल्पना

प्राग् आधुनिक – आधुनिकता से पूर्व

आलिम – विद्वान

रवानी– प्रवाह

उद्दाम – बंधन रहित

सार्वभौमिक – स्थानीय अथवा जातीय सीमा से मुक्त

12.11 उपयोगी पुस्तकें

- नजीर ग्रंथावली – डॉ.नजीर मुहम्मद (संपादक), उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ
- नजीर अकबराबादी (विनिबंध)– मोहम्मद हसन, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

12.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

1. (क) सामान्य तौर पर नज़ीर के काव्य पर फारसी, संस्कृत और ब्रज का प्रभाव दिखाई देता है।

   (ख) फिराक गोरखपुरी ने अपनी पुस्तक 'उर्दू भाषा और साहित्य' में लिखा है कि बीसवीं शताब्दी के दूसरे चतुर्थ में नज़ीर की गिनती महाकवियों में होने लगी।

   (ग) आदमी 'नागा' परंपरा को एक खास दिशा देने वाली रचना है जिसमें किसी विशिष्ट व्यक्ति को नहीं बल्कि आम आदमी को महत्व दिया गया है।

   (घ) नजीर के 'शहर–आशोब' के केंद्र में वह सामान्य जन है जिनका कारोबार और जिंदगियाँ बरबाद हो गई।

2. देखिए भाग 12.2

3. देखिए भाग 12.3

4. देखिए भाग 12.5

5. देखिए भाग 12.4

6. देखिए भाग 12.6

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY